सिद्ध योग

[illegible]

अप्रैल
१९६०

सद् गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

[illegible] अंक
मूल्य
२.००

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, [illegible] आगरा

इस अंक मे पढ़िये

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. सुलभ योग	....	१
२. योग का अधिकारी कौन ? (विशेष लेख)	अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	२
३. श्री रामललाष्टक-स्तोत्र	श्री ओमप्रकाश मित्तल	१०
४. योग से अनन्त सुख की प्राप्ति	पं. सियाराम जी शास्त्री	११
५. स्व० महात्मा कृष्णादास जी	श्री सोमदत्त शर्मा बी.ए.	१३
६. सत्यं शिवं सुन्दरम्	वनवासी	१६
७. महासिद्ध मत्स्येन्द्र नाथ	श्री विजयसिंह एम. एस. सी	१७
८. आयु की अभिवृद्धि	डा. श्री त्रिभुवनदास दामोदरदासजी	२३
९. धारणा	श्री किशोरीलाल जी शास्त्री (आोझी)	२७
१०. सत्संग सुधा	श्री चन्द्रहास शर्मा एम.ए.एम.एड	३१
११. संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है	महात्मा श्री धनानन्दनागर	३२
१२. साधक भाव	श्री बीरेन्द्रसिंह वर्मा एम.एस.सी.	३३
१३. प्राण और अपान: एक वैज्ञानिक विवेचन	महात्मा नारायण स्वामी	३५
१४. योगी श्री हरिहरानन्द जी	एक साधक	४१
१५. शक्तिपात और उसके परिणाम	श्री महेन्द्रनारायण कोटपर	४६
१६. संस्कार और संस्कार फल	श्री सुरेन्द्रबहादुर एम.ए.	४७
१७. तीन मुक्तक (कविता)	श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'	५१
१८. मोक्ष की एकाग्रता का रहस्य	श्री रामसुमेर उपाध्याय	५२
१९. योग योगेश्वर महिमा (कविता)	श्री जगदीशशरण बिलगईयाँ	६६
२०. योगी जालन्धर और उनकी योग शक्ति	श्रीमती सरिता भारद्वाज	७०
२१. हंस की गति विस्तार	श्री मनोहर लाल शर्मा	७४
२२. आश्रम महिमा (कविता)	श्री राजपति दुबे 'बालेन्दु'	८४
२३. भगवत प्रेम (कविता)		
२४. कुण्डलिनी योग	श्री प्रेमवती एम ए	८६
२५. योगासन और उसके लाभ	योग प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा	९१
२६. आश्रम समाचार	सम्वाददाता द्वारा	
२७. सम्पादकीय		

संयुक्त सम्पादक —श्री 'दिव्य'

शक्ति पात

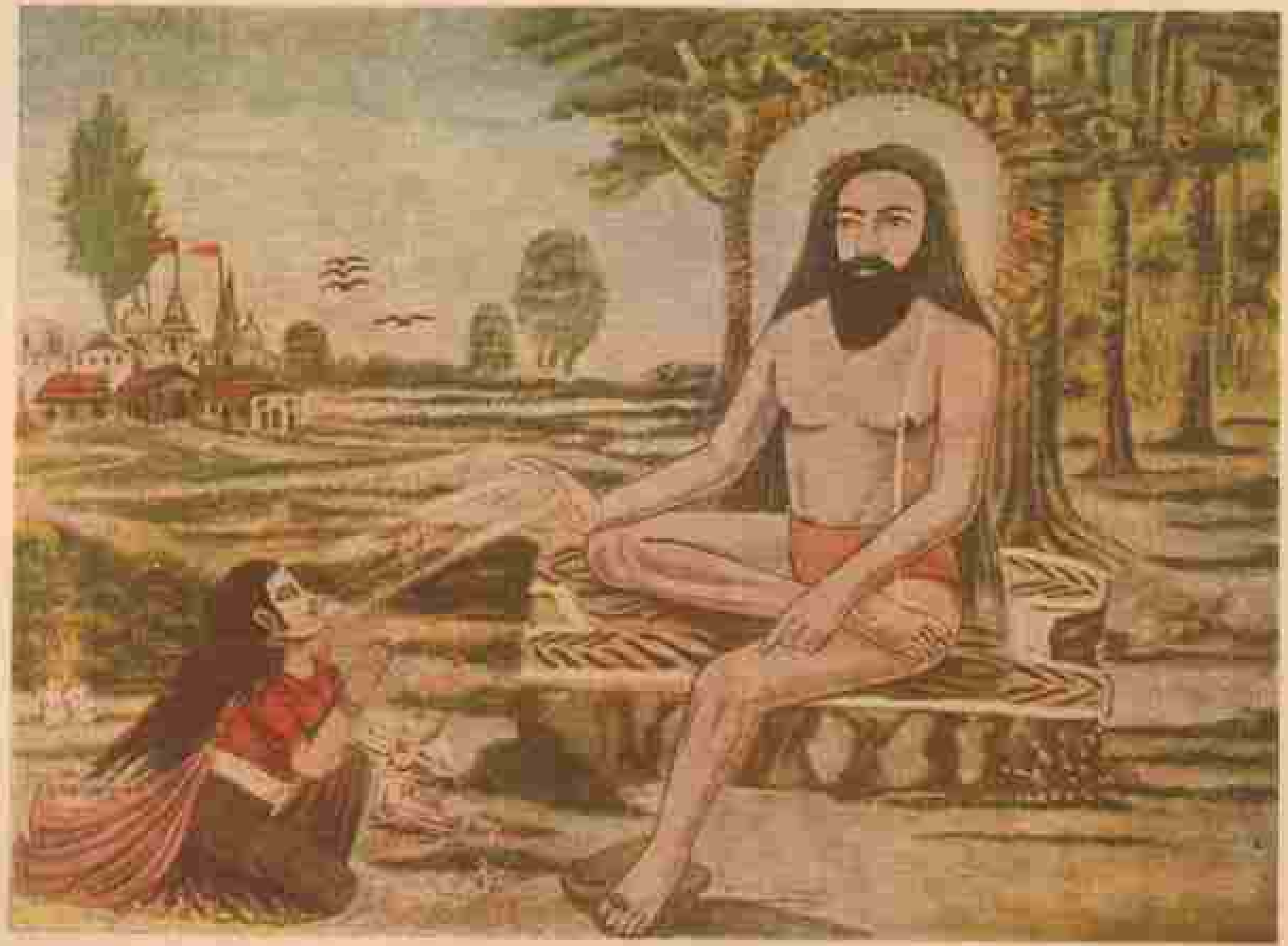

प्रभु ने निज कर धर दियो शीश,
रामरती के सन्मुख प्रगटे, कृपासिन्धु जगदीश ।

ॐ

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष ३
अङ्क १

अप्रैल
१९७०

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तस्माप्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग' ॥

सुलभ योग

भोगा मेघवितान मध्य विलसत्सौदामिनीचञ्चला
आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीनाम्बुवद् भंगुरम् ।
लोला यौवनलालसास्तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं
योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः ४९

सांसारिक भोग मेघों में चमकती बिजली के समान अस्थिर है, वायुरूप वायु द्वारा तितर-बितर किये गये पानी बरसाने वाले मेघों की नाईं क्षणभंगुर है, जवानी के उमंग की तरंगें भी अस्थायी है। इसलिए हे विद्वानो ! धैर्य पूर्वक की गयी समाधि द्वारा सुलभ योग में मन को लगाइये ॥४२

हमारा विशेष लेख :—

योग का अधिकारी कौन ?

(योगेश्वरेश्वर पूज्यपाद अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

योगदर्शन में भगवान् पतंजलि देव ने समाधि प्राप्ति के दो प्रमुख साधनों का वर्णन किया है और उन दोनों को भव प्रत्यय और उपाय प्रत्यय नाम से व्यवहृत किया है। 'भव प्रत्यय' और 'उपाय प्रत्यय वाले योगियों का वर्णन गतवर्ष हम किसी अंक में ईश्वर प्रणिधान और समाधि सिद्धि नामक लेख में कर चुके हैं। जिसमें उपाय प्रत्यय वाले योगियों के लिये 'श्रद्धा वीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक इतरेषाम्" कह करके उपाय प्रत्यय योगियों के उत्कृष्ट साधनों का वर्णन किया है। किन्तु फिर भी संसार में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो प्रयत्न करने पर भी अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो पाते। वैसे योग विद्या भी तो इतनी महत्वा है कि उसमें मंद से भी मंद साधक अपने अधिकारानुसार साधन करने से अपने चरम लक्ष्य को पा ही जाता है। उन्नति से रुक जाने का कारण केवल अनधिकार चेष्टा है। इसलिये हमारे शास्त्रों में स्थान-स्थान पर यह आदेश दिये गये हैं कि—

गोपनीयं गोपनीयं,
गोपनीयं च प्रयत्नतः।
दत्ते च सिद्धि हानि-,
स्यात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥

अर्थात् विद्या को छिपा कर रखना चाहिये। यदि विद्या किसी अनधिकारी को प्राप्त हो जाती है तो वह इस प्रकार नष्ट हो जाया करती है जैसे ऊसर भूमि में बोया बीज नष्ट हो जाया करता है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि हम उत्तम शास्त्रीय आदेश को किसी से कहें ही नहीं। अपने ही अन्दर उसे छिपाये हुये ले जायें। ऐसा करने से तो संसार की बहुत हानि होगी। प्रत्युत जो उस विद्या के अधिकारी हैं, वे उसको पाकर अपने को कृतार्थ कर सकते हैं। उनको वे रहस्य अवश्य बतलाने चाहिये।

जगदात्मा अखिललोक-पावन श्री कृष्णचन्द्र ने अर्जुन को गीता के ज्ञान का परमोपदेश देकर उसको सब प्रकार से कृतार्थ कर दिया, और पूर्ण विश्वास दिलाते हुये यह स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि—

सर्व धर्मान्परित्यज्य,
मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो,
मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

अर्थात् हे अर्जुन तुम सब कर्म और गुणों के झमेलों को छोड़कर मेरी एक की शरण हो जा, मैं तुझे सब प्रकार के पापों से छुड़ा

दूंगा। इस प्रकार सारी गीता सुना देने एवं पाप-मोचन के लिये अपना पूरा-पूरा उत्तरदायित्व ग्रहण कर लेने के पश्चात् भी अधिकार एवं अनधिकार की मीमांसा को समझाने के लिये ये शब्द तो कह ही दिये—

इदं ते नातपस्काय
नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं
न च मां योऽभ्यसूयति॥
य इमं परमं गुह्यं
मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा
मामेवैष्यत्यसंशयः॥

अर्थात्, हे अर्जुन! मेरा बतलाया हुआ यह गीत-ज्ञान जो तपस्वी और सेवक नहीं है, अभक्त है और मुझसे द्वेष करते हैं उनको कभी नहीं बतलाना चाहिये। किन्तु कहाँ बतलाना उचित है, यह भी जगदात्मा अपने श्री मुख से कहकर बतला रहे हैं कि जो मेरे बतलाये हुये इस ज्ञान एवं गुह्य विद्या को मेरे भक्तों में बतलावेगा, वह व्यक्ति मेरी पराभक्ति को पाकर मुझको प्राप्त हो जावेगा। इस में कोई भी शंका की बात नहीं है।

यह सब कह देने के पश्चात् और भी बल के साथ पुनः कह दिया कि—

न च तस्मान्मनुष्येषु
कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे
तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

अर्थात् जो मेरे इस संदेश को मेरे भक्तों में बतलावेगा, वह व्यक्ति मुझे अत्यन्त प्रिय है। उससे बढ़कर और प्रिय नहीं हो सकता। इन शब्दों को पढ़कर हर व्यक्ति अनुमान लगा सकता है कि जगदात्मा श्रीकृष्ण के हृदय में गीता-ज्ञान-प्रचार के लिये कितने ऊँचे और उत्कृष्ट भाव हैं। किन्तु अभक्त, निन्दक, द्वेष करने वाले एवं तपश्चर्या-रहित व्यक्तियों के लिये नहीं इससे सिद्ध होता है कि अधिकारी ही विद्या को प्राप्त कर सकता है। अधिकार शब्द का अर्थ है-कार्यारम्भन-सामर्थ्य, जिस व्यक्ति के अन्दर कार्य करने की सामर्थ्य है, वह उस विद्या का अधिकारी है। जिस प्रकार प्रथम कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी एम०ए० और आचार्य के कोर्स का अधिकारी नहीं होता। प्रत्युत वह प्रथम कक्षा उत्तीर्ण होने के अनन्तर द्वितीय कक्षा के ही कोर्स को पढ़ने का अधिकारी हुआ करता है, न कि एम०ए० तथा आचार्य के कोर्स का। यदि उस छात्र के सामने कोई व्यक्ति बिना सोचे समझे एम०ए० और आचार्य की पुस्तकें लाकर रख देता है, तो वह उसकी महान भूल-करता है। उन पुस्तकों से उस विद्यार्थी का किसी भी प्रकार का हित नहीं हो सकता। प्रत्युत, अपनी योग्यतानुसार पाठ्य पुस्तकों के पढ़ने से ही भला होगा। इसी प्रकार विद्या में भी अधिकारी उत्तमाधिकारी- मन्दाधिकारी आदि आदि अधिकारियों के भेद हैं अपने अधिकारानुसार ही मनुष्य श्री गुरुदेव का आदेश प्राप्त करके अपने लक्ष्य में सफलता

प्राप्त कर सकता है।

भगवान् आदिनाथ श्री महादेव जी ने 'शिव संहिता' में मृदु, मध्य, अधिमात्र और अधिमात्रतम कह करके चार प्रकार के योग-साधकों का वर्णन किया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है:—

चतुर्धा साधको ज्ञेयो
मृदुमध्याधिमात्रकः ।
अधिमात्र तमः श्रेष्ठो
भवाब्धौल्लंघनः क्षमः ॥

अर्थात् योग साधन के अभ्यासी साधकों में मृदु, मध्य, अधिमात्र एवं अधिमात्रतम चार प्रकार के साधक हैं। उनसे से संसार-सागर से पार करने के लिये सामर्थ्यवान अधिमात्रतम साधक उच्च श्रेणी का है। अधिमात्रतम साधक के लक्षण भगवान सदाशिव ने 'शिव संहिता में इस प्रकार कहे हैं:—

महा वीर्यान्वितोत्साही
मनोज्ञः शौर्यवानपि ।
शास्त्रज्ञोऽभ्यास शील-
श्च निर्मोहश्च निराकुल ॥
नवयौवन सम्पन्नो
मिताहारी जितेन्द्रियः ।
निर्भयश्च शुचिर्दक्षो
दाता सर्व जनाश्रयः ॥
अधिकारी स्थिरो धीमान्
यथेच्छावस्थितः क्षमी ।
सुशीलो धर्मचारी च
गुप्त चेष्टः प्रियंवदः ॥
शास्त्र विश्वास सम्पन्नो
देवता गुरु पूजकः ।
जनसङ्ग विरक्तश्च
महा व्याधि विवर्जित ॥
अधिमात्र तरो ज्ञेयः
सर्व योगस्य साधकः ।
त्रिभिस्संवत्सरैः
सिद्धिरेतस्य नात्र संशय ।
सर्व योगाधिकारी स
नात्र कार्या विचारणा ॥

अर्थात् जो साधक महावीर्यवान् परमोत्साही शूरतासम्पन्न, भावनामात्र से मन की बात को समझने वाला, शास्त्र का ज्ञाता, अभ्यास शील, धैर्यवान, मोह ममता-रहित, नव युवक, अल्पाहारी एवं जितेन्द्रिय, सब प्रकार से निर्भय, परमशुद्ध चतुर, प्राणीमात्र के श्रेय के लिये सभी का अवलम्बन भूत, दान, शील स्थिर बुद्धि वाला बुद्धिमान, यथेच्छावस्थित, सर्वाधिकारी एवं क्षमा शील, सुशील स्वभाव का धर्माचरण करने वाला, अपनी चेष्टाओं को गुप्त रखने वाला, मृदुभाषी, शास्त्र पर विश्वास रखने वाला, गुरु और देवता की पूजा करने वाला महाव्याधि रहित एवं जन संसर्ग से विरक्त इस प्रकार का अधिमात्रतम कहा गया है। यह साधक सब प्रकार की योग-साधना का अधिकारी है। इस प्रकार के उत्साही साधक को तीन वर्ष के

अभ्यास से ही सकल सिद्धियाँ उपलब्ध हो जाया करती है।

दूसरे प्रकार के साधक को भगवान् शिव ने अधिमात्र साधक के नाम से कहा है। उसके लक्षण इस प्रकार कहे गये है।

स्थिर बुद्धिर्लये युक्तः
स्वाधीनो वीर्यवानपि।
महाशयो दयायुक्तः
क्षमावान् सत्यवानपि॥
शूरो वयस्थः श्रद्धावान्
गुरुपादाब्ज पूजकः।
योगाभ्यासरत श्चैव
ज्ञातव्यश्चाधिमात्रकः॥
एतस्य सिद्धिः षड् वर्षे
भवेदभ्यास योगतः।
एतस्मै दीयते धीरो
हठयोगश्च साङ्गतः॥

अर्थात् स्थितप्रज्ञ, लययोग के अभ्यास को इच्छावाला स्वाधीन एवं वीर्यवान उत्तम विचारों, वाला, दयायुक्त, क्षमाशील एवं सत्यवादी, नवयुवक, शूरवीर, श्रद्धावान, श्री गुरुदेव के चरण कमलों की पूजा करने वाला, और योगाभ्यास में रत रहने वाला, इस प्रकार के साधक को अधिमात्र साधक जानना चाहिये। यह साधक हठयोग का अधिकारी है और छः वर्ष के अभ्यास से उसको अवश्य ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

तीसरे प्रकार का साधक मध्य साधक कहा गया है और उसके लक्षण भगवान् शिव ने इस प्रकार निर्देश किये है:—

सम बुद्धि क्षमायुक्तः
पुण्याकांक्षी प्रियंवदः।
मध्यस्थः सर्वकार्येषु,
सामान्यः स्यान्नसंशयः।
एतज्ज्ञात्वैव गुरू,
र्दीयते मुक्तितो लयः॥

अर्थात् समबुद्धि, क्षमायुक्त, पुण्यकांक्षी, प्रिय बोलने वाला, सब कार्यों में मध्यस्थ रहने वाला, मध्यस्थ शब्द का अर्थ है—जो प्रसन्नता में अधिक हर्ष को प्राप्त नहीं और किसी शोकप्रद समचार से एकाएक शोक निमग्न न हो जाये। सब प्रकार से सामान्यभाव से रहने वाला स्थिर बुद्धि युक्त साधक मध्य साधक कहा जाता है। यह साधक लययोग का अधिकारी है। योग के ये तीन प्रकार के साधक एक प्रकार से उत्कृष्ट ही है। सब प्रकार से सिद्धि-भाजन एवं अधिकारी है। इन तीनों के अतिरिक्त भगवान शिव ने एक मृदु नाम के साधक का और वर्णन किया है। उसके लक्षण इस प्रकार लिखे है:—

मन्दो साही सुसंमूढ़ो
व्याधिस्थो गुरुदूषकः।
लोभी पापमतिश्चैव
बह्वाशी वनिताश्रयः॥
चपलः कातरो रोगी
पराधीनोऽति निष्ठुरः।
मंदा चारो मन्दवीर्यो

ज्ञातव्यो मृदुमानवः ॥
द्वादशाब्दे भवेत्सिद्धि
रेतस्य यत्नतः परम ।
मन्त्र योगाधिकारी स
ज्ञातव्यो गुरुणा ध्रुवम् ॥

अर्थात् जो मन्दोत्साही हो, मूढ़ चित्त भ्रमित बुद्धिवाला, रोगी, गुरु-निन्दक, पाप-मति, लोभी, स्त्रियों का संगी और अधिक खाने वाला, चपल एवं कातर, अत्यन्त कठोर स्वभाव का पराधीन एवं रोगी, हीन वीर्य और मन्दाचारी, इस प्रकार का मनुष्य, मृदु साधक है अर्थात् सबसे निकृष्ट है। यह साधक केवल मात्र मंत्र-योग का अधिकारी है। इस को तीव्रतम अभ्यास से १२ वर्ष में सिद्धि प्राप्त होती है।

भगवान् शिव ने यह चार प्रकार के अधिकारी साधकों का वर्णन अपनी 'शिव संहिता' में किया, और इनके साथ ही साथ यह भी बतला दिया कि ये सभी साधक किस-किस योग के अधिकारी हैं। अधिमात्र तम साधक सर्व योगाधिकारी, अधिमात्र साधक हठयोगाधिकारी, मध्य साधक लय योगाधिकारी एवं मृदु साधक को मंत्र-योग का अधिकारी बतलाया। इसी का नाम अधिकारी-भेद है। यदि हम मृदु साधक को सर्व योगाधिकारी बनादें या उसको हठ योग की शिक्षा देना आरंभ करदें तो वह कभी भी सिद्धि की प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि बहुभाषी, वनिताश्रयी गुरु-दूषकः आदि अवगुण उसके अन्दर पूर्ण रूपेण परिपूरित हैं और वह हीन वीर्य एवं मन्दोत्साही है। अतएव किसी भी प्रयत्न को चरम सीमा तक पहुंचा ही नहीं सकता।

इसी प्रकार का निर्देश योग-दर्शन के उपदेष्टा भगवान् पतञ्जलिदेव ने भी अपने योग दर्शन में स्पष्ट रूप से कर दिया है। जहां पर उन्हों ने उपाय प्रत्यय एवं भव-प्रत्यय के योगियों का वर्णन किया, है वहां पर 'श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक इतरेषाम्' यह सूत्र कहकर उपाय प्रत्यय वाले योगियों का अधिकार बतलाया और वहां पर यह भी स्पष्ट रूपेण कह दिया कि—

तत्राधि मात्रो पायानाम् एवं
तीव्र संवेगा नामासन्नः समाधि
लाभः समाधि फल च भवतीति।

अर्थात् जो साधक उत्तमाधिकारी हो, अधिमात्र तम हो उसको अतिशीघ्र ही समाधि सिद्धि की प्राप्ति होती है और समाधि सिद्धि को प्राप्त हो जाया करता है।

भगवान् पतंजलि देव स्पष्ट निर्देश करते हैं:—

मृदु मध्याधि मात्रत्वा
त्ततोऽपि विशेषः ॥

इस सूत्र पर भगवान् व्यास का भाष्य इस इस प्रकार है: —

मृदु तीव्रो मध्य तीव्रोऽधि मात्र तीव्र इति ततोऽपि विशेषः तद्विशेषान्मृदु तीव्र संवेगस्या सन्न ततोः, मध्य तीव्र

संवेगस्या मध्यतरः, तस्मादपि मात्र तीव्र संवेग स्याधिमात्रो पायस्याप्या सन्न तमः समाधिलाभः समाधि फलञ्चेति ॥

अर्थात् मृदु साधक और तीव्र संवेग, मध्य साधक, तीव्र संवेग इस प्रकार से तीन भेद होगये । इसी प्रकार से मध्य साधक और तीव्र संवेग, अधिमात्र साधक और तीव्र संवेग, अधिमात्रतम साधक और तीव्र संवेग, इस प्रकार से साधकों के यह तीन तीन प्रकार के भेद होते चले गये जो साधक जिस संवेग का है उसी प्रकार का उपाय उन को मिलना चाहिये तब वह अपने विषय में शीघ्र सिद्धि को प्राप्त कर सकता है जिस प्रकार उक्त प्रकरण में भगवान् शिव ने अधिमात्रम साधक को सर्व योगाधिकारी, अधिमात्र साधक को हठयोगाधिकारी, मध्य साधक को लयाधिकारी और मृदु साधक को मंत्र योगाधिकारी बतलाया । ये लोग अपने अपने अधिकार के अनुसार ही प्रगति कर सकते हैं ।

एक अत्यन्त वीर्यवान्, बलयुक्त एवं उत्साही युवक से यदि कोई व्यक्ति यह कह दे कि—जाओ, तुम दौड़कर दस मील से अमुक वस्तु ले आओ तो वह ले आवेगा । परन्तु यही बात एक मन्दाधिकारी, हीन वीर्य, महा व्याधि ग्रस्त व्यक्ति से कह दीजावे, तो वह एक फर्लांङ्ग भी दौड़ नहीं सकेगा, प्रत्युत थोड़ी दूर दौड़ने की चेष्टा करने परभी उसका प्राणान्त हो जावेगा ।

इसी प्रकार जो साधक अल्प वीर्य, वासना भोगी और व्याधिग्रस्त है, ऐसे व्यक्ति को यदि हम हठ और लय की शिक्षा देंगे तो वे साधनाएं उसके लिये हानिप्रद सिद्ध होंगी न कि श्रेयस्करी । इस लिये जो मनुष्य जिस विद्या का जिस प्रकार अधिकारी है, गुरुदेव उसको उसकी हित-बुद्धि से उसी विद्या में प्रवेश कराते है । मुझे यह लेख लिखते हुये एक छोटा सा दृष्टान्त स्मरण हो आया, जो यहाँ पर पूर्ण रूपेण घटित होता है ।

एक स्थान पर एक महात्मा अपने योग प्रचार का कार्य-क्रम निभारहे थे । उन्होंने व्याख्यान देते हुये अपने भाषण में कहा कि योग विद्या सार्वभौम विद्या है । इसको हर व्यक्ति प्राप्त करसकता है । हिन्दू मुसलमान, यहूदी-पारसी आदि किसी का भी भेद-भाव इसके अन्दर नहीं है । महात्मा सरल चित्त थे । उन्होंने योग विद्या को भू मंडल के प्राणी मात्र के लिये बतला दिया । उनके कहने का यह अर्थ तो नहीं था कि उस विषय में वे मृदु मध्य अधिमात्रतम आदि भेदों को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे, किन्तु मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना के अनुसार, हर एक प्राणी के मस्तिष्क में न्यारी मतियाँ होती है । महात्मा के व्याख्यान को श्रवण करने के अनन्तर, उनको सरल चित्त समझकर, कुछ उच्छृंखल स्वभाव के व्यक्तियों ने योग शिक्षा के लिये कुछ ऐसे व्यक्तियों को तैयार किया जो निम्न श्रेणी के थे । विद्या-हीन एवं वासना-भोगी थे । जिनका परम्परागत कार्य निकृष्टतम था । वे सभी लोग अपनी झाड़ू और टोकरियों को उठाकर महात्मा जी के पास पहुंचे और कहा कि

महाराज जी ! कल आपका व्याख्यान हमने सुना, और सुनकर बड़े प्रसन्न हुये, क्योंकि उन सब ने महात्मा द्वारा कथित योग विद्या पर/प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार विषयक बात कह कर, स्वयं को योगाभ्यास का का इच्छुक बताया। महात्मा जी ने उत्तर दिया –

ठीक है हमें बड़ी प्रसन्नता है। तुम लोग इस वट वृक्ष के नीचे बैठ जाओ एवं एकाग्रचित्त होकर

हरे राम हरे राम,
राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण,
कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'

'कलिसंतरणोपनिषद्' में कहे गये इस महामंत्र का दो घंटे अनवरत जप करो। इस प्रकार करने पर तुम शनैः शनैः उन्नतम योग शिक्षा के अधिकारी बन जाओगे। किन्तु वे लोग वस्तुतः योग शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा से तो आये ही नहीं थे। उन लोगों का लक्ष्य तो केवल मात्र इतना ही था कि देखें, हमें महात्मा जी योगोपदेश करते भी या नहीं। जब उन लोगों को इस महामंत्र का उपदेश दिया गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह राम-राम का मंत्र तो हम पहले से ही जानते है और सारा संसार जानता है। हम तो उस योग का अभ्यास करेंगे, जिस योग का अभ्यास उच्च वर्गों में पैदा होनेवाले ब्राह्मण के ब्रह्मचारी कर रहे है। महात्मा जी उनकी मनो वृत्तियों को पहचान गये और उन्होंने अपने दो-एक हठाभ्यासियों को बुलाकर, और बद्ध पद्मासन लगवाकर उनके सामने बैठा दिया। और कह दिया कि भाई ठीक है, जो ये लोग अभ्यास कर रहे है वही अभ्यास तुम भी करो। अपने पद-तलों को उठा कर अपनी जंघा पर जमाओ। और उस जमे हुये पैर पर अपने दूसरे पैर के पादतल को लाकर जंघाओं पर जमादो। अपने दोनों हाथों को पीठ के पीछे से घुमाकर बायें हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को, इधर दाहिने हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ लो, और मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठे रहो, इससे तुम्हारा यह आसन सिद्ध हो जायेगा, और तुम्हारा ध्यानाभ्यास बनने लगेगा।

जब उन लोगों ने यह आसन करने की चेष्टा की तो सभी निष्फल रहे। और अपने ही मुख से कह उठे कि महाराज जी ! यह तो हमारे मतलब की चीज नहीं है। जो वस्तु हमारे योग्य है उसी का हमें उपदेश देने की कृपा करें। अंततः वे स्वयं ही इस निर्णय पर आगये कि उनके लिये यही श्रेष्ठ है कि वे लोग बैठकर कुछ समय तक—

हरे राम हरे राम,
राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण,
कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस षोडशाक्षर महामंत्र का जाप किया करें। और ऐसा ही कुछ अन्य सरल व्यक्तियों ने

तें करना आरम्भ किया। थोड़े दिन पश्चात् शनैः शनैः उनके मनों के अन्दर एकाग्रता आयी और वे लोग अभ्यासी बन गये।

यही कारण है कि हमारे पूर्वजों ने अधिकार-भेद की बात बहुत ही उत्तम और प्रामाणिकता के साथ समझायी है। जो व्यक्ति जिस विद्या का अधिकारी है, वह उसमें प्रगति कर सकता है। यदि अपने अधिकृत विषय को छोड़ कर वह इधर-उधर भटकेगा तो अवश्य ही अपने लक्ष्य-पथ से पतित हो जायगा और वहाँ तक नहीं पहुँच सकेगा।

अतः हर व्यक्ति को गुरुदेव की शरण में आ कर, गुरु-उपदेशानुसार अपनी उच्चतम प्रगति के लिये प्रयत्न करना चाहिये। जिससे शीघ्रातिशीघ्र परमानन्द एव शाश्वती शान्ति की प्राप्ति हो।

—×—

भगवान राम की स्थित-प्रज्ञता

—××—

प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकतः
तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।

राम को जब अभिषेक की सूचना मिलती है तो उनके चेहरे पर कोई विशेष उल्लास नहीं चमकता है और वनवास की खबर मिलने पर कोई शिकन भी नहीं पड़ती है।

राम की यह कितनी ऊँची स्थितप्रज्ञता है, कितनी महानता है कि जिसके सामने राज्य सिंहासन का न्यायप्राप्त अधिकार कोई महत्त्व नहीं रखता। जिसके लिए जीवन की भौतिक सुख सुविधा से भी अधिक मूल्यवान है पिता की आज्ञा, विमाता की आत्म-तुष्टि! यह आदर्श एक व्यक्तिविशेष का ही गुण नहीं, किन्तु समूचे भारतीय जीवन पट पर छाया हुआ है। राम तो राम है ही किन्तु लक्ष्मण भी कुछ कम नहीं है। लक्ष्मण जब राम के वनवास की सूचना पाते हैं, तो वे उसी क्षण महल से निकल पड़ते हैं। सुन्दरियों का स्नेह उन्हें रोक नहीं सका, राजमहलों का वैभव और सुख राम के साथ वन में जाने के निश्चय को बदल नहीं सका। वे माता सुमित्रा के पास आकर राम के साथ वन में जाने की अनुमति मांगते हैं। और माता का भी कितना विराट् हृदय है जो अपने प्रिय पुत्र को वन-वन में भटकने से रोकती नहीं, अपितु कहती है—राम के साथ वनवास की तैयारी करने में तुमने इतना विलम्ब क्यों किया?

"रामं दशरथं विद्धि, मां विद्धि जनकात्मजाम्,
अयोध्यां विपिनं विद्धि, गच्छ पुत्र! यथासुखम्।"

—हे वत्स! राम को दशरथ की तरह मानना, सीता को मेरे समान समझना और वन को अयोध्या मानना। राम के साथ वन में जा, देख राम की छाया से कभी दूर मत होना।

श्री रामलालाष्टक स्तोत्रं

श्री ओमप्रकाश मित्तल, मेंदा जिला सहारनपुर

१ भक्त जन हृदय वासं , योगाधीशं जगद्गुरुम् ।
श्री गंडाराम सुतं देवं , श्री रामलालं नमाम्यहम् ॥१॥
२–त्रिगुणातीतं ब्रह्मदेवं , मायातीतमखिलेश्वरम् ।
भक्त वत्सल गोविन्दं , श्री रामलालं नमाम्यहम् ॥२॥
३–अष्टांग योग मार्तण्डं , जीवनतत्त्वप्रकाशकम् ,
श्री सिद्ध गुफा कृतावासं , श्री रामलालं नमाम्यहम् ॥३॥
४–कलिमलदोष हर्तारम् , सदाशिवेन दीक्षितम् ।
अशुभं क्षय कर्तारं , श्री रामलालं नमाम्यहम् ॥४॥
५–सर्वव्याधिहरं देवं , सर्वतीर्थं मयं प्रभुम् ।
चतुर्वर्ग प्रदातारम् , श्री रामलालं नमाम्यहम् ॥५॥
६–द्वन्द्वातीतं परं ब्रह्म , प्रभो कैवल्य दायकम् ।
सच्चिदानन्द दातारं , श्री रामलालं नमाम्यहम् ॥६॥
७–सर्वैश्वर्यमयं देवं , सर्वाश्चर्यं मयं विभुम् ।
निर्वाणचित्तकृतावपुषं , श्री रामलालं नमाम्यहम् ॥७॥
८–अनन्तानादि सुर वन्द्यं , महाकालं महेश्वरं ।
कालातीतं सद्गुरुं तं , श्री रामलालं नमाम्यहम् ॥८॥
९–श्री रामलालाष्टकमिदं , सदा साम्राज्य दायकं ।
प्रातः काले पठेयस्तु , श्री सद्गुरु शरणं लभेत् ॥
१०–श्री चन्द्रमोहन तर्कशास्त्र, शरणं प्राप्नोति ये नरा ।
जन्मान्तर कृतं पापं , स्मरण मात्रेण विनश्यति ॥
११–श्लोकाष्टक मिदं पुण्यं, य पठेत् गुरु सन्निधौ ।
सर्वं पाप विनिर्मुक्त्वा , स गच्छेत्परमं पदम् ॥

योग से अनन्त सुखकी प्राप्ति

वेदान्ताचार्य पं. सियाराम शास्त्री, कासगंज (एटा)

यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि प्रत्येक प्राणी सुख की साधना में संलग्न है, और उसकी प्राप्ति के लिए अहर्निश तत्पर रहता है, किन्तु वास्तविक सुख क्या है इसका उसको ज्ञान नहीं। वास्तविक एवं आत्यन्तिक सुख का श्री भगवान गीता में वर्णन करते हैं–

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्
बुद्धिग्राह्य मतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं
स्थितश्चलति तत्त्वतः

—गीता ६।२१

आत्यन्तिक सुख बुद्धिग्राह्य है अतः स्वसंवेद्य है जिसमें स्थित होकर जीव पुनः स्वरूप से विचलित नहीं होता, वह आत्यन्तिक सुख है। शेष सांसारिक सुख केवल सुखाभास है झलक मात्र है। दार्शनिक सिद्धान्त केवल इसी सुखकी प्राप्ति के लिए हैं। अनादि संसार के अनादि प्रवाहमें बहता हुआ जीव अनन्त संस्कारों की अनन्त वासना से जब अभिभूत हो जाता है तब वह सुखकी प्राप्ति में दृष्ट सुख स्त्री पुत्रादि धनादि में मृग मरीचिका की भाँति तृप्त न होता हुआ तृष्णा के प्रबल प्रवाह में बहता हुआ संतोष और सुख शान्ति का अनुभव नहीं करता, एवं ऐकान्तिक सुखकी जिज्ञासा करता है

वास्तविक वह जिज्ञासा दृष्ट सुखों की तरह आनुश्रविक सुखों में, अर्थात् वैदिक यज्ञ यागादि स्वर्गादि सुखों में भी समाप्त नहीं होती क्योंकि वे भी दृष्ट सुखों की तरह चिर स्थाई नहीं भगवान गीता में कहते हैं–

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति।

विशाल स्वर्गलोक भोग करने के बाद भी प्राणी फिर मृत्यु लोक में ही जन्म लेता है। अतएव उनमें भी चिर स्थायित्व नहीं। इस लिए जिज्ञासा का बना रहना आवश्यकीय ही है। अतः प्रकृति पुरुष के विवेक से ही जिज्ञासा शान्त होती है ऐसा सांख्यवादियों का सिद्धान्त है।

दुःख त्रया भिघातात् जिज्ञासा
तदप घातके हेतौ।

इष्टे सांख्यायां चेन्
नैकान्तान्त्यन्ततोऽभावात् ॥१॥
दृष्टवदानु श्रविकः, स
ह्यविशुद्धिक्षयातिशय युक्तः ।
तद्विपरीतः श्रेयान्,
व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानात् ॥२॥

इसी प्रकार न्याय दर्शनकार श्री महर्षि गौतम जी का कहना है कि मिथ्या ज्ञानकी निवृत्ति होने के अनन्तर ही अनन्त सुख प्राप्त होता है। मिथ्या ज्ञानकी निवृत्ति होने से राग द्वेष आदि दोषों की निवृत्ति होती है। दोषों की निवृत्ति होने पर प्रवृत्ति की निवृत्ति होती है पश्चात् जन्म-मरण की निवृत्ति होती है। तभी अक्षय सुख प्राप्त होता है।

दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरा पाये तदन्तरा पाया दपवर्गः ।

न्याय दर्शन ॥ १ ॥

मिथ्या ज्ञान है आत्मा नहीं है, शरीर मन बुद्धि आदि ही आत्मा हैं। उनके अनुकूल पदार्थों में राग तथा प्रतिकूल में द्वेष होना। अतः शास्त्र निषिद्ध कर्मों में प्रवृत्त होकर असत्य भाषण मन से अनिष्ट चिन्तन, शरीर से हिंसा करना इन पाप रूप प्रवृत्ति का नाम अधर्म है। इसके विपरीत सत्य भाषण अनिष्ट चिन्तन का त्याग मन वाणी कर्म से हिंसा का त्याग धर्म रूप प्रवृत्ति है।

इसी प्रवृत्ति से जन्म एवं मरण होता है। इसके अभाव में शाश्वत सुख उपलब्ध होता है। यह उपर्युक्त दर्शन का सिद्धान्त है। इसी प्रकार योगाचार्य श्री महर्षि पतञ्जलि जी ने भी साधन पादयोग दर्शन में उपर्युक्त मिथ्या ज्ञान को ही अविद्या नाम से कहा है। अविद्या शब्द का अर्थ है अनित्य में नित्य बुद्धि, अपवित्र वस्तु में पवित्र भाव, यथा अपवित्र धातुओं से निर्मित इस शरीर को पवित्र मानना, यद्यपि यह पार्थिव शरीर है अनात्म है तथापि इसको अपना स्वरूप मानकर इसके लिए भोग भोगादि सामग्री के निमित्त हजारों अनर्थ करता है। आजकल जो अभि-मानों में छीना झपटी चल रही है, यह अना-त्मामें आत्मानुभूति ही है उसका कारण अविद्या है।

अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचि सुखात्म ख्यातिरविद्या ।

– योग दर्शन ।

वस्तुतः मिथ्याज्ञान और अविद्या दोनों अभिन्न हैं। अतः अविद्या निवृत्ति होने पर ही वास्तविक सुख लाभ हो सकता है। यही सभी दार्शनिकों का सिद्धान्त है। अविद्या निवृत्ति के लिए हमारे पूर्वज धर्मात्मा महा मुनीन्द्र योगी संन्यासी ऋषि महर्षि दीर्घकाल पर्यन्त हजारों वर्ष एकान्त अरण्य स्थानों में निवास करते हुए बड़े संयम-नियम से योगा भ्यास तपश्चर्या एवं समाधि रूप साधना में लगे रहते थे। तथापि उन असंख्य साधकों में से कोई विरले महाभाग पराम्बा के मंगलमय चरणों की अनुकम्पा से पवित्र होकर परम पद के अधिकारी हुए। अतः साधन के ही द्वारा

इष्ट कृपा से जीव निर्वाण पद प्राप्त कर सकता है—

य प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धाम् परमं,

जिसको प्राप्त करके पुनः आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है। जिसको प्राप्त करके प्राप्तव्य शेष नहीं रहता। जिसमें स्थित हुआ महान् दुःख से भी विचलित नहीं होता। वही दुःख के संयोग से वियोग करने वाला योग है। उसका निश्चय पूर्वक सावधानी से अभ्यास करना चाहिए।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं
मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितोऽपि दुःखेन,
गुरुणाऽपिन विचाल्यते।

गीता ६ २२

तं विद्याद् दुःख संयोगं,
वियोगं योग संज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो,
योगोऽनिर्विण्ण चेतसा।

गीता ६।२३

अतः उपर्युक्त भगवद् वाक्यानुसार पूर्ण निष्ठा एवं संयम से दीर्घ काल पर्यन्त साधना करने से ही मनुष्य को अमृतत्व प्राप्त हो सकता है। और मनुष्य जीवन सफल हो सकता है। शिवं भूयात्॥

स्व० महात्मा श्री कृष्णदासजी

श्री सोमदत्त शर्मा-बी.ए.बी-एड. सालवन

महात्मा श्री कृष्णदास जी उत्तर प्रदेश में जिला रायबरेली ग्राम रामपुरा के रहने वाले थे। गृहस्थाश्रम पूरा करने के पश्चात् आपने अपने घर को त्याग दिया और कई वर्षों तक इधर-उधर घूमने के पश्चात् सद् गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की शरण में आये। और वहाँ आकर श्री सद् गुरुदेवजी महाराज से इन्होंने योग-दीक्षा प्राप्त की। योग दीक्षा प्रदान करने के पश्चात् श्री महाराज ने इन्हें योग प्रचार हेतु योग-साधन आश्रम सालवन जिला करनाल भेज दिया। महात्मा कृष्णदास जी ने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा शिरोधार्य करके सालवन आश्रम का कार्य-भार आ सम्हाला और लगभग १५ वर्ष तक यहाँ रहकर अत्यन्त लगन और उत्साह से आश्रम की सम्यक् सेवा की।

सालवन का आश्रम गाँव से लगभग दो फर्लांङ्ग की दूरी पर दशाश्वमेध तीर्थ पर स्थित है। जिस समय महात्मा कृष्णदासजी को यहाँ भेजा गया था उस समय शिवजी का

एक मन्दिर स्नान के लिए एक घाट और आवास के लिए एक दो मकान थे। तथा शेष भाग में जंगल था जो अब भी विद्यमान है। महात्मा जी ने अपनी साधना के लिए इसी एकान्त तथा निर्जन स्थान को उपयुक्त समझ-कर अपनी साधना प्रारम्भ कर दी। महात्मा जी को इस एकान्त स्थान पर अपनी साधना के मध्य कई प्रकार के दिव्य चमत्कार

(महात्मा कृष्णदास जी)

दिखाई दिये। रात्रि समय में तीर्थ पर रहने वाले सिद्ध लोग इनसे प्रायः मिल जाया करते थे। महात्मा जी के कथनानुसार इन दर्शन देने वाले सिद्धों में महात्मा श्री गौरीशंकरजी जिन्हें ग्रामीण लोग अंगारनाथ भी कहते हैं मुख्य हैं।

श्री गुरुदेव जी के चरणों में प्रेम

महात्मा कृष्णदास जी का अनन्य प्रेम अपने गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के चरणों में था। उनके हृदय में हर समय श्री गुरुदेवजी के दर्शनकी लालसा बनी रहती थी। श्री गुरुदेव जी जब भी मालवन आश्रम आते तो महात्मा जी उनके चरणों को हाथों में लेकर अपने सिर से इस प्रकार रगड़ा करते थे जैसे मालिश कर रहे हों। इसी प्रकार उनके प्रस्थान करने पर वे बालकों की भाँति बिलख२ कर रोया करते थे श्री गुरुदेव जी बड़ी कठिनाई से उन्हें सान्त्वना दे पाते थे और पुत्रवत् स्नेह करते हुए अपने रूमाल से उनका अश्रु प्रवाह रोकने लगते थे। श्री गुरुदेवजी की निन्दा में महात्मा जी को एक शब्द सुनना भी असह्य था यदि ऐसा करने का कोई साहस करता तो लाठी लेकर उससे लड़नेको उद्यत हो जाते थे। ऐसी थी उनकी गुरु भक्ति।

गत बसंत पंचमी सम्वत २०२६ को आनन्द कन्द श्री प्रभु जी और श्री सद्गुरुदेव जी का स्मरण करते करते महात्माजी परलोक वासी हो गये। श्री प्रभुजी के चरण कमलों में उनका विशेष अनुराग था। प्रभुजी की जयन्ती में शामिल होने के लिए एक बार महात्मा जी सवाई जा रहे थे। गाड़ी एत्मा-

दपुर स्टेशन पर रुकती थी। गाड़ी रुकी पर महात्मा जी उतरना भूल गये। जब गाड़ी चलने लगी और महात्मा जी को मालूम हुआ कि स्टेशन पीछे रह गया है तो चलती ट्रेन से कूद पड़े। कई डिब्बे ऊपर से गुजर गये महात्मा जी घायल हो गये किन्तु ऐसे घोर संकट में प्रभु जी ने आपके प्राणों की रक्षा की। स्वयं प्रकट होकर उनसे कहा कृष्णदास उठो अचेत क्यों पड़े हो। आश्रम समीप है वहां पहुंचो तुम्हारा उपचार होगा। महात्माजी आश्रम पहुंचे और थोड़े दिनों के बाद ठीक हो गये। प्रभुजी की ऐसी अनुकम्पाओं से वे जीवन भर कृतकृत्य रहे।

आश्रम की सेवा—

अपनी ८०-९० वर्ष की अवस्था में भी महात्मा जी अपनी साधना में तल्लीन रहने के साथ साथ अपने शारीरिक श्रमसे आश्रम को सदा साफ सुथरा और आकर्षक बनाये रहते थे। उन्होंने वहां एक जल कूप और पक्के चबूतरे का निर्माण कराया। आश्रम में फल फूल लगा कर उसे सुन्दर बनाने का उन्हें बड़ा चाव था।

महात्मा जी की वृद्धावस्था को देखते हुए कृपाकर श्री गुरुदेवजी ने ब्रह्मचारी रामजी को सालवन आश्रम भेज रक्खा था। महात्मा जी के समान ही साधनाशील और परिश्रमी ब्रह्मचारी रामजी का आगमन श्री गुरुदेव जी की कृपा से हो गया। इन्होंने सालवन पहुंच कर एक तीन मंजिली पक्की गुफा का निर्माण पांच हजार रुपये की लागत से कराया। महात्मा जी के स्वर्गवास के समय ब्रह्मचारी रामजी सालवन नहीं थे। वे आश्रम में गुरुदेव जी के पास थे। गुरुदेव जी को जब महात्मा जी के स्वर्गवासका समाचार मिला तो उन्होंने तुरन्त ब्रह्मचारी रामजी को सालवन भेजा और महात्माजी की स्मृतिमें एक विशाल भण्डारा करने का आदेश दिया। इस भण्डारे में अच्छे-अच्छे साधु-सन्त और महात्माओं को आमंत्रित किया गया। श्री गुरुदेव जी भी ब्रह्मचारी ज्ञानीराम भजनोपदेशक प्रभु शर्मा आदि के साथ भण्डारे में सम्मिलित होने पहुंचे और महात्मा कृष्णदास जी की स्मृति में श्री गुरुदेव जी ने दो दिन आश्रम में रहकर महत्वपूर्ण योग-सम्बन्धी प्रवचन देकर उपस्थित जन समूह को कृतकृत्य किया।

सांई का घर दूर है, जैसे पेड़ खजूर। चढ़े तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर॥
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। हौं बौरी ढूंढन गई, रही किनारे बैठ॥

—सन्त कबीर

सत्यं-शिवं-सुन्दरम्

(श्री वनवासी)

महर्षि धौम्य आश्रम स्थित अपनी कुटिया में लेटे हुए थे। रात्रि में वर्षा हुई। महर्षि को ध्यान आया कि आश्रम से कुछ दूर आश्रम के जो खेत हैं उनकी मेंड़ें टूटी फूटी हैं कहीं ऐसा न हो कि वर्षा का पानी खेतों में से बाहर निकल जाय और खेत बिना पर्याप्त पानी अधप्यासे रह जाँय। उन्होंने अपने शिष्य आरुणी को बुलाया और कहा बेटा जाकर देखो यदि कोई टूटी मेंड़ हो तो उसे सम्हाल आओ ताकि पानी खेतों के बाहर न निकल जाय।

× × ×

गुरु की आज्ञा शिरोधार्यकर आरुणी फांवड़ा लेकर खेतों की ओर चल दिया। देखा और मेंड़ें तो प्रायः ठीक हैं एक मेंड ऐसी है जहां से वेग पूर्वक सभी पानी निकला जा रहा था। आरुणी ने फांवड़े से कई बार मिट्टी डालकर पानी को रोका किन्तु बहाव इतना वेगवान था कि वह डाली हुई मिट्टी को बार बार बहाकर मेंड़ को तोड़ देता था।

× × ×

आरुणि ने यह देख कर फावड़ा दूर फेंक दिया और स्वयं बहाव के सन्दक में जाकर लेट गया ताकि पानी रुकसके। पानी तो रुक गया। पर आरुणि वहीं भी रुका पड़ा रहा। गुरु जी को अपनी विवशता का वह समाचार भी न दे सका।

× × ×

देर हो जाने पर गुरु जी स्वयं आरुणि को पुकारते हुए खेतों पर आये। उन्होंने देखा आरुणि स्वयं लेटकर पानी के प्रबल वेग को रोके हुए है।

× × ×

गुरु जी उसकी ऐसी गुरु भक्ति और श्रद्धा देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उठाकर हृदय से लगाया और कहा बेटा तुम कल्याण के भागी होगे और सम्पूर्ण वेद और धर्म शास्त्र तुम्हारी बुद्धि में स्वतः प्रकाशित हो जायेंगे।

× × ×

हुआ भी ऐसा ही। सद्गुरु की कृपा मात्र से आरुणि वेदों का प्रकाण्ड पंडित और शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता होकर परमपद का भागी बना।

× × ×

शास्त्रों में इसी लिए कहा गया है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्साक्षात् महेश्वरः

—××—

महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ

श्री विजयसिंह एम. एस-सी.
रिसर्च स्कोलर

योगमार्ग के मूल सिद्धान्तों से सम्बन्धित अनेक सम्प्रदायों में से 'नाथ' या 'सिद्ध' सम्प्रदाय का स्थान ऐतिहासिक काल में सर्वोत्कृष्ट रहा है। इस सम्प्रदाय ने किसी समय अत्यन्त अद्‌भुत रूप से कुछ ही काल के अंतर में अनेक सिद्ध पुरुषों को अवतरित किया है। इस सम्प्रदाय को पर्याय शब्दों में ग्रंथों के अन्दर 'योग सम्प्रदाय' तथा 'सिद्ध सम्प्रदाय' इत्यादि नामों से सम्बोधित किया गया है। इस सम्प्रदाय के आदि प्रणेता एवं आदिगुरु भगवान शंकर हैं। शिव ही सभी के उपास्य देव हैं ऐसा 'सिद्ध सिद्धान्त' में निम्न प्रकार से प्रतिपादन किया गया है—

> देदीप्यमानस्तत्त्वस्य
> कर्ता साक्षात स्वयं शिवः।
> संरक्षन्तो विश्वमेव
> धीराः सिद्ध मताश्रयाः॥

जैसा कि इस मत वालों का यथार्थ विचार है कि सिद्धान्त को मात्र परम सिद्ध ही बना सकते हैं और उनके द्वारा बनाया गया सिद्धांत काल के प्रवाह से प्रभावित नहीं होता अर्थात् अप्लावित हुआ करता है। अध्यात्म की ओर अग्रसर होने वालों को अवश्य ही सिद्ध मार्ग या योग मार्ग का अनुसरण करना चाहिये जिससे तत्व ज्ञान से पूर्ण होकर अपने परम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकें। क्योंकि वेदान्ती बहुदीक्षित आचार्य, कठिन तप करने वाले तपस्वी, नाना तीर्थों में भटकने वाले पुण्यार्थी ये सभी दुःख से दबे रहने के कारण सर्वदा तत्त्व ज्ञान से दूर रह गये हैं।

> आचार्या बहुदीक्षिता दुरितता
> नग्नव्रतास्तापसाः।
> नानातीर्थनिषेवका जिनपरा
> मौने स्थिता नित्यशाः॥
> एते ते खलु दुखमार्गनिरत
> ते तपसो वञ्चिता-
> स्तस्मात् सिद्धमतं।

'नाथ' शब्द उस अलक्ष पुरुष के लिये कहा गया है जो कि मानव को मोक्ष प्रदान करने में दक्ष होता है तथा 'ना' का अर्थ अनादि रूप से है तथा 'थ' भुवनत्रय की स्थिति। दोनों उसे प्रदर्शित करता हुआ अपनी अनुपम सत्ता का बोध जीवमात्र को कराता रहता है।

> श्री मोक्षदानदक्षत्वात्
> नाथ ब्रह्मानुबोधनात्।
> स्थगिताज्ञान विभवात्
> श्री नाथ इति गीयते॥
> (शक्ति संगम तंत्र से)

सिद्धों के अवतार का मात्र एक कारण:—

अपने पवित्र भारत भूमि में समय पर अनेक महापुरुषों का जन्म होता रहता है।

जिसमें सिद्धों का अवतार ग्रहण, मात्र जगत्-आत्मा योगयोगेश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी के कथनानुसार पृथ्वी से अधर्म को पराजित करके धर्म की स्थापना तथा मुमुक्षजनों को परम लक्ष्य प्राप्ति में सहायक बनने के हेतु हुआ करता है। धर्मानुष्ठानों से सत्त्व की वृद्धि होती है और सत्त्व से पुण्य-लाभ हुआ करता है। वही अर्जित पुण्य सिद्धों की संगति दिलाया करता है। इस पृथ्वी पर मुमुक्षु जनों द्वारा जब-जब अर्जित किया गया पुण्य अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेता है। उस समय हिमालय के स्वच्छ, शीतल, वर्फमें समाधिस्थ अनेक ईश्वर तुल्य महापुरुषों को इस अवनी पर अवतरित होने के लिये बाध्य सा कर देता है। उन कृपा-सागरों की कृपा-दृष्टि से एक ही समय में अगणित जनों को भव त्रय ताप से मुक्ति मिल जाया करती है। हमारे अनादि सिद्ध परम योगयोगेश्वर करुणा-वरुणालय श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज ने जन साधारण मानव मात्र को कीट-पतंगों के सदृश जीवनयापन करते देखा तो अकारण ही दयावत् प्रवाह में प्रवाहित होकर अवतरित हुये तथा कुछ ही समयान्तर में योग-सुधा से सिंचित कर कितने ही प्राणियों को परमलक्ष्य प्राप्त करने में सहायक हुये। आज भी हमारे परमपिता ज्योतिर्मय महासिद्ध परम करुणार्णव देवाधिदेव श्री गुरुदेव जी लीला-वत् अनेक प्राकृतिक कष्टों को सहन करते हुये अगणित जनों को योगात्मक अद्वितीय मार्ग का मर्म क्रियात्मक रूप से कृपा पूर्वक समझाते हुये अनेक स्त्री एवं पुरुष को सिद्ध स्थिति प्रदान कर रहे हैं। अनेक साधक नित्य ही दिव्यानुभव प्राप्त करते रहते हैं। ऐसे अहैतुकी अद्भुत कृपा-वर्षा करनेवाले यह महासिद्ध पुरुष हुआ करते हैं जिनके स्पर्श, संसर्ग से भी जीव सुख एवं शांति प्राप्त कर लेता है।

नव-नाथों का जन्मः—

द्वापर के अंतिम भाग में एक ऐसा ही समय उपस्थित था जब कि इस धरती पर अनेकानेक मुमुक्षजन निरन्तर विकल से हुए ईश्वरसे प्रार्थना करते रहते थे-हे प्रभो ! अब आपसे दूर रहकर इस असार संसार में मन-मानी चाल से चलने वाली इन्द्रियों के प्रभाव में रहकर काम, क्रोध, मद मोह, मत्सर से निश्चित रूप से सताया जाकर, हम दीनों का रहना कठिन ही नहीं अपितु महाक्लेश-कारी है। हे अनन्त ! अब अपनी समीपता का वर प्रदान करके हमें भी अनन्तकाल के लिए अपने में समाहित कर लो।

ऐसी व्यग्र विनीत प्रार्थना सुनकर जग-द्गुरु भगवान आशुतोष ने बद्रिकाश्रम स्थित आठों नारायणों को प्रेरणात्मक आदेश देते हुये कहा—हे नारायणो ! भूतलपर अनेक ईश्वर प्रेमी मुमुक्षु जन ईश्वर सामीप्यता के लिये तड़प रहे हैं। आप सभी समयानुकूल अवतार ग्रहण करके योगरूपी अमृत का पान करा कर संसाररूपी सागर से उन्हें मुक्ति दिला दें। आप सभी महाशक्ति सम्पन्न मुक्त सदृश

ही है । मैं भी अपने अंश रूप में अवतार ग्रहण करूँगा जिसका नाम 'गोरक्ष नाथ' होगा । ऐसा कहकर भगवान आदिनाथ ने अपने लोक को गमन किया ।

श्री मत्स्येन्द्रनाथ अवतार कथाः–

सर्व प्रथम श्री कविनारायण जी ने भृगु-वंशीय किसी प्रतिष्ठित ब्राह्मण के घर में जन्म ग्रहण किया । सारा परिवार आनन्द के समुद्र में डूब सा गया । परन्तु दैव गुण सम्पन्न बालक को तो जनहित का कार्य करना था न कि साधारण मनुष्यों की भाँति सांसारिक मायाजाल में फँस कर जन्म-मरण के चक्र में पड़ना था । अतः जब बालक के पिता ने जन्म घड़ी के अनुसार ज्योतिष गणना कराई तो उसे यह जानकर महान दुःख हुआ कि यह लड़का तो अमंगलकारी ग्रहों से प्रभावित है तथा इस लड़के की वजह से परिवार क्लेश पावेगा । कैसी ईश्वर की माया रची गयी, तुरन्त ही पिताने बालक को समुद्र में फेंका और उधर एक बड़ी मछलीने बालक को उदरस्त कर लिया । दैव गुण सम्पन्न बालक मत्स्य के पेट में रहकर ईश्वर आराधना में लीन हो गया । उधर कैलाश धाम में देवर्षि नारदजी द्वारा माँ पारवती अपने बार-बार मृत्यु एवं जन्म लेने के बारे में जानकर तथा अमर-कथा का महात्म्य सुनकर भगवान शिव से विनयपूर्वक कहने लगीं–प्रभो ! आप हमें भी अमरकथा (ब्रह्म ज्ञान) का उपदेश करें जिससे बार-बार जन्म ग्रहण एवं मृत्यु चक्रसे मुक्ति पा जाऊं । इसी सन्दर्भ में भगवान शंकर ने सागर-तट पर निर्जन वातावरण में सब जीवों को निद्रा के वशीभूत कर श्री गौरी जी को अमर कथा सुनायी । कथा कहने के बाद भगवान शिव की दृष्टि पास पड़ी एक मछली पर पड़ी जिसके अन्दर श्री मत्स्येन्द्र नाथ जी का परम प्रकाश प्रकाशित हो रहा था । दिव्यदृष्टि से सारी बातें जानकर भगवान आदिनाथ ने उस मत्स्य को स्तम्भित करके बालक को बाहर निकाला तथा पुत्रवत् प्यार करते हुये उसे योग-दीक्षा भली प्रकार देकर तथा इस परम ब्रह्मविद्या में पूर्ण रूप से मत्स्येन्द्र नाथ जी को सिद्ध बनाकर आज्ञा दी–बेटा ! जिस हेतु तुमने अवतार लिया है अब वह समय आ गया–तुम संसार में जाकर इस परम कल्याणकारी विद्या का प्रचार करते हुये लोगों को भव-सागर से पार करोगे कुछ समय बाद तुम्हें सर्व प्रकार पूर्ण शिष्य की प्राप्ति होगी जो तुम्हारा तथा इस विद्या का संसार में यश सर्वदा के लिये अमर कर देगा । (समयान्तर में 'गोरक्षनाथ' श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी के परम भक्त शिष्य हुए)

योग शक्ति द्वारा लोक कल्याणः—

भगवान श्री पतञ्जलिदेव जी ने 'योग-दर्शन' के विभूतिपाद में योग-विद्या द्वारा प्राप्त होने वाली अनेक सिद्धियों का वर्णन किया है । उन सिद्धियों से सम्पन्न योगिराजों की मानवी लीला बड़ी ही विचित्र हुया करती है । ऐसे पुरुषों का भोजन करना पीना, चलना, हँसना, मुस्कराना किसी विशेष जगह

बिना प्रयोजन जाना सभी साधारण या असाधारण क्रियाओं में एक विशेष रहस्य छुपा रहता है। यह रहस्य और कुछ भी नहीं बल्कि 'जन-कल्याण की भावना' ही होता है। इनके हर कर्मों का अन्तिम फल लोक कल्याण हुआ करता है। ऐसे ही सिद्ध पुरुषों में हम श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी की गणना करते हैं।

एक बार श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी अनेक प्रदेशों का भ्रमण करते तथा योगरूपी अमोघ औषधि द्वारा जन मानस में व्याप्त अनेक प्रकार के मानसिक एवं भौतिक रोगों का निदान करते हुए इस महाविद्या के सुपात्रोंमें प्रयोगात्मकरूप से स्थापित करते हुये अयोध्या नगरी में पहुँचे। वहाँ का सूर्यवंशी राजा पशुपति बहुत ही धर्मवान तथा श्री रामचन्द्र जी का अनन्य उपासक था। वह नित्य प्रति राज मन्दिर में श्री रामचन्द्र के एक अत्यन्त ही सुन्दर प्रतिमा के समक्ष घण्टों साधना-रत रहा करता था। परन्तु कठिन उपासना करते हुए भी श्री रामचन्द्र जी के दर्शन का उसे अवसर प्राप्त नहीं हो पाया था। एक दिन ज्योंही राजा ने अपने रथ से उतर कर मन्दिर में प्रवेश किया उसी समय साधारण महात्मा के वेश में भ्रमण करते हुए श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी भी उसी समय राज मन्दिर के समीप से गुजरे एकाएक वे भी मन्दिर में प्रवेश करना चाहते थे परन्तु द्वार रक्षकोंने उन्हें अन्दर प्रवेश नहीं करने दिया। वे कहने लगे—महाराज जी कभी दूसरे समय आना इस समय राजा साहब मन्दिर में पूजनार्थ आये हैं उनकी ऐसी आज्ञा है कि जिस समय वे मन्दिर में हों हम किसी को अन्दर प्रवेश न करने दें अतः आप भी इस समय प्रवेश नहीं कर सकते। श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी द्वारपालों से बोले-भैया हम रमता योगी हैं थोड़ी देर बाद तो न जाने किधर जा चुके होंगे इसलिये हमें अभी अन्दर जाने दो ऐसा कहकर वे अन्दर जाने को हुए। महात्मा को रुकते हुए न देखकर द्वार रक्षक बिगड़ उठे तथा भला-बुरा कहकर उन्हें रोका। इस पर श्री नाथजी मुस्कराकर लौट पड़े तथा ऐसा विचार करते हुये कि इन बेचारोंका क्या दोष। ये तो राजाज्ञा के दास हैं। वे नगर के बाहर एक सघन बाग में जाकर बैठ गये तथा विचार किया कि राजा को अवश्य ही कुछ सबक दे देना चाहिये और इसी बहाने इस पर कृपा भी हो जावे तो अच्छा होगा।

इधर राजा ने पूजा समाप्त कर भगवान श्री राम के समक्ष भूमिगत हो जब प्रणाम किया और जिस समय उठना चाहा तो उसे उस समय अपना सारा शरीर पृथ्वीसे चिपका हुआ भान होने लगा, अथक प्रयासपर भी वह अपने को मुक्त न कर सका। मंत्री, सेवक, राज्य वैद्य, मंत्रोपचारक, क्रमशः सभी की युक्ति व्यर्थ हो गई। कोई भी राजाको मुक्त न कर सका। सभी परेशान हो उठे यह कैसा आश्चर्य'। किस पाप का इतना भयानक दण्ड। अन्त में चतुर मंत्री ने द्वारपालों से

पूछा—क्या तुम लोगों ने किसी ईश्वर भक्त या किसी महात्मा का अनादर तो नहीं किया? द्वारपाल बोले—श्रीमन् घटना तो कुछ इसी प्रकार से कुछ समय पूर्व घटी है परन्तु हम उसके लिये अपराधी नहीं हैं। क्योंकि एक महात्माजी हठपूर्वक मंदिर में प्रवेश पाना चाहते थे परन्तु राजा के आज्ञानुसार मन्दिर में हम उन्हें कैसे प्रवेश करने देते जब की स्वयं राजा मंदिर में उपस्थित थे। इतना सुनते ही मंत्री द्वारपालोंसे कहने लगा—जल्दी बताओ वे महात्मा किधर को प्रस्थान किये हैं उनका क्या रंग रूप था? इसपर द्वारपालों से सब वर्णन प्राप्त कर शीघ्र ही मंत्री उस मार्ग का अनुसरण करता हुआ नगर के बाहर आया तथा सावधानी से लोगों का निरीक्षण करता हुआ उसी बाग में जा पहुँचा जहाँ श्री नाथ जी शांत मुद्रा में बैठे हुये थे। एक तेजस्वी महात्माको देखकर मंत्री ने मन में यह विचार किया कि बस यही वे महात्मा हो सकते हैं। ऐसा सोच कर महात्मा के चरणों पर आ गिरा और बहुत ही आर्त स्वर में अनुनय विनय करता हुआ कहने लगा हे महापुरुष आप प्रसन्न हों, हम निरीहों पर दया कर तथा राजा को महान कष्ट से मुक्त कर दें। श्री नाथ जी ने अनजान बनकर पूछा—भद्र ! कौन नृप? कैसा कष्ट? मंत्री बोला—प्रभो आप सर्वात्मा, सर्वव्यापी, अन्तर्यामी हैं आप से क्या छिपा है। ऐसा कहकर आद्योपान्त सारी घटना कह सुनाया और बार-बार विनय पूर्वक प्रार्थना करता हुआ कहने लगा, प्रभो। आपकी कृपा से ही महाराज कष्ट से मुक्त हो सकते हैं। आप ईश्वर स्वरूप हैं मात्र एक बार आप चलकर राजा को देख लें हमें पूर्ण विश्वास है कि राजा स्वस्थ हो जावेंगे।

श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी बोले—अच्छा तुम चलो मैं अभी आता हूं। मंत्री महात्मा जी के वचन पर विश्वास कर मंदिर की ओर अग्रसर हुआ इधर श्री नाथ जी जब देखा कि अब मंत्री राज्य मंदिर के समीप पहुँच गया है तो उसी क्षण योग सिद्धि से तुरन्त ही राज्य मंदिर के द्वार पर उपस्थित हो गये। मंत्री आने से पूर्व महात्मा को पहुँचा देखकर आश्चर्यचकित था तथा साथ ही प्रसन्न हो रहा था कि यह कोई पहुँचे हुये योगी हैं अतः राजा को कष्ट से अब मुक्त ही समझना चाहिये।

मंदिर में श्री नाथ जी ने पहुँच कर राजा पर दृष्टिपात किया उसी क्षण राजा कष्टमुक्त होकर पूर्व की तरह स्वस्थ हो उठ खड़े हुये तथा बार-बार श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी को प्रणाम करने लगे। श्री नाथ जी ने आशीर्वाद देकर राजा को उपदेश करते हुये आज्ञा दी—राजन ! राज्य संचालन करते हुए ऐसा कोई आज्ञा प्रसारित मत करो जिससे किसी मुमुक्षु जन या किसी महात्मा को तनिक भी कष्ट पहुँच सके राजाने विनम्रता से नाथजी की आज्ञा को भविष्य में पालन करने का वचन दिया तथा बहुत ही आग्रहपूर्वक प्रार्थना करके श्री नाथ जी को कुछ दिन राज्य-भवन में निवास करने के लिए राजी कर लिया। इसी अवसर पर राजा योग-मार्ग

में नाथ जी द्वारा रक्षित हुआ तथा पुनः-पुनः प्रार्थना करके अपनी चिर अभिलाषाको प्रकट किया। श्री नाथ जी को तो यही करना था उन्होंने उसे वचन दे दिया कि तुम्हें श्री रामचन्द्र जी का स्थूल-दर्शन करवा देंगे।

एक दिन श्री सरजू जी के एकान्त तट पर राजा को अपने साथ लेकर टहलते समय श्री नाथ जी बोले—योगशक्ति की महिमा बहुत ही अद्भुत है। तुम विश्वास और श्रद्धा से हमारी योग-शक्ति के कुछ चमत्कार देखो। ऐसा कहकर क्षण-मात्र में भयंकर बादलों से आकाश को आच्छादित कर दिया। पुनः वायु संचार कराके कुछ ही देर में सभी बादलों को अदृश्य कर दिया। इस प्रकार से नाना प्रकार के प्रकृत पर विजय की करामात दिखाकर राजा से बोले—अब सावधान हो जाओ मैं श्री रामचन्द्र का आह्वान करता हूं। कुछ क्षण ध्यानस्थ रहे। बाद में नेत्र खोल दिये। उसी क्षण परम प्रकाश युक्त धनुष, सिर पर मुकुट, राजसी बाने में सजे भगवान श्रीराम उपस्थित हुये तथा राजा ने भगवान को प्रत्यक्ष सामने देखकर भूमिगत होकर प्रणाम किया। भगवान श्रीरामने राजा के सर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया तथा भविष्य में बार-बार दर्शन देने का वर देकर अपने स्थान को चले गये।

श्री नाथ जी की महाशक्ति का अवलोकन कर राजा गद्‌गद् हृदय होकर बार-बार प्रणाम करने लगा तथा अपने अपराध के लिये क्षमा-याचना चाहने लगा। श्री नाथ जी ने उसे अपने पास प्रेमपूर्वक बिठाकर योगविद्या के अन्य गूढ़ रहस्यों को भी उसे प्राप्त करा दिया। जिसके फलस्वरूप चिरकाल तक धर्मपूर्वक राज्य करते हुए राजा ने अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लिया।

परम शक्तिशाली

मानव शरीर में तीन ऐसी चीजें हैं जो परम शक्तिशाली हैं पर चंचल होने के कारण वे मनुष्य के काम में नहीं आ रहीं। पहली और प्रधान वस्तु है बिन्दु अर्थात् शुक्र। यदि इस को ऊपर की ओर उठाया जा सके तो—बाकी दो भी स्थिर होते हैं।

बाकी दो हैं वायु और मन। हठयोगी का सिद्धान्त है कि इनमें से किसी एक को भी यदि वश में कर लिया जाय तो दूसरे दो स्वयमेव वश में हो जाते हैं।

—हठयोग दर्शन

आयुकी अभिवृद्धि

डा. श्री त्रिभुवनदास दामोदरदासजी सेठ

दुर्लभ मनुष्य देह बार-बार नहीं मिलता। इसलिए हृदय में हरि-नाम से प्रेम धारण करने का प्रयत्न करो। यदि एक बार दृढ़ निश्चय कर लो कि प्रभु की प्राप्ति करके ही रहूंगा, तो फिर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो तुम्हें प्रभु-प्राप्ति के मार्ग से हटा दे। भगवान्-साक्षात्कार करके मानव जीवन को धन्य तथा सफल बनाना है, इसके लिए आयुवृद्धि और स्वास्थ्य रक्षा के लिये प्रयत्नशील रहना अपना कर्त्तव्य है—

आचार्य कहते हैं—

'इदं शरीरं खलु धर्मसाधनम् '—

तथा—

धर्मार्थकाममोक्षाणां ,
शरीरं साधनं यतः ।
सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं ,
शरीरस्य हि रक्षणम् ॥

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिये नीरोग तथा स्वस्थ शरीर ही मुख्य साधन है। इसलिये शरीर की रक्षा अवश्य करनी चाहिये।' वेद में भी दीर्घ-जीवन की प्राप्ति के लिये बार-बार कहा गया है

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

(अथर्ववेद १९ । ७१ । १)

'ब्राह्मणों को पवित्र करने वाली वेद माता गायत्री के द्वारा हम ईश्वर की स्तुति करते हैं वे हमें आयु, प्राणप्रजा, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करती हैं तथा अन्त में शान्ति प्राप्ति करा कर ब्रह्मलोक में ले जाती है।'

इस मन्त्र में सबसे प्रथम आयु का उल्लेख किया गया है। आयु के बिना प्रजा, कीर्ति, धन आदि का कुछ भी मूल्य नहीं है। आत्मा के बिना देह का कोई मूल्य नहीं। यही बात आयु के विषय में है। सौ वर्ष की आयु के लिये अनेक प्रार्थनाएं देखने में आती हैं।

दीर्घ जीवन के लिये अथवा मृत्यु को दूर करने के लिए छः बातें आवश्यक हैं— (१) ब्रह्मचर्य, (२) प्राणायाम, (३) प्रणव-जप, (४) सिद्ध पुरुष की कृपा, (५) औषधि तथा रसायन-सेवन और (६) मिताहार। आयु की रक्षा और वृद्धि के ये छः स्तम्भ हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा ,
देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण ,
देवेभ्यः स्व राभरत् ॥

(अथर्ववेद ११ । ५ । १९)

'ब्रह्मचर्य रूपी तप से विद्वानों ने मृत्यु को दूर हटा दिया। इन्द्रने भी ब्रह्मचर्य के प्रताप से देवताओं को सुख और तेज प्रदान किया। यह मन्त्र आज्ञा देता है कि मृत्यु को दूर करने

के लिये ब्रह्मचर्य का पालन अवश्य करो। ब्रह्मचर्य की महिमा को मनुष्य ने जब से भुलाया, तभी से उसका अधःपतन प्रारम्भ हो गया। जीवन में उबाल, मेधा की अप्रतिम शक्ति जीवन मस्ती, यौवन का सात्विक उल्लास, आकृतिका ओजस्, वाणी की दृढ़ता कार्य की दृढ़ता, सच्चे साहस की स्वाभाविकता, जीवन में चापल्य और चाञ्चल्य—ये सब पूर्ण ब्रह्मचर्य के चिह्न हैं।

वैज्ञानिकों ने यह निश्चय किया है कि ८० पाउंड भोजन से ८० तोला खून बनता है और ८० तोला खून से दो तोला वीर्य बनता है एक मास की कमाई डेढ़ तोला वीर्य है। एक बार ब्रह्मचर्य-भङ्ग होने से लगभग डेढ़ तोला वीर्य निकलता है। इससे आयु घटती जाती है। कठिन परिश्रम से प्राप्त की हुई शक्ति को एक बार में नष्ट कर देना कैसी मूर्खता है। यही वीर्य यदि नष्ट न हो, तो ओजस् बनकर सारे शरीर को तेजस्वी बना देता है। इसी कारण कहा है—

'मरणं बिन्दुपातेन,
जीवनं बिन्दुधारणम्।'

वीर्य का नाश मृत्यु है और वीर्य की रक्षा जीवन है।'

गुरु के सानिध्य में रहकर प्राणायाम करना सीखना चाहिए और फिर उसका अभ्यास बढ़ाना चाहिए। स्वरोदय के अनुसार एक दिन में अर्थात् चौबीस घंटे में मनुष्य के औसत इक्कीस हजार छः सौ श्वास चलते हैं। उनमें जितनी कमी की जाय उतनी ही आयु बढ़ जाती है तथा जितने ही श्वास बढ़ते हैं, उतनी ही आयु घट जाती है।

मैथुनक्रिया, क्रोध, उत्तेजना, हिंसा, आवेश अति हर्ष, दौड़ना आदि में श्वास जल्दी-जल्दी चलकर बढ़ जाते हैं, जिससे आयु घटती है और प्राणायाम, ध्यान, शान्ति, क्षमा, ब्रह्मचर्य, नम्रता धीरे-धीरे चलना आदि में श्वास धीमी गति से चलते हैं, अतः आयु की अवधि श्वासों पर निर्धारित है, काल पर नहीं। आयु के घटने-बढ़ने का यह रहस्य निरन्तर स्मरण रखना चाहिये। मनुष्य को जहाँ तक हो सके, जल्दी-जल्दी और लघु श्वास नहीं लेना चाहिये बल्कि ऐसी आदत डालनी चाहिये कि श्वास लम्बा हो और धीरे-धीरे चले। प्राणायाम इसका एक मुख्य साधन है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य प्राणायाम नहीं कर सकता, इसलिये दीर्घ श्वास-प्रश्वास की क्रिया नीचे लिखे अनुसार करने से उद्देश्य सिद्धि हो सकती है।

प्रत्येक मनुष्य को सबेरे सूर्योदय से पूर्व उठना चाहिये। मल-मूत्र का त्याग करके स्नान करे। पश्चात् जमीन पर कम्बल या दरी बिछाकर सिर के नीचे कोई तकिया बिना रक्खे लेट जाय। हाथ-पैर को ढीला रक्खे। कमर का बन्धन ढीला करे और मुँह बंद करके नाक से श्वास ले। श्वास इस प्रकार ले कि नाभि के साथ-साथ पेट फूलता जाय। इस प्रकार पेट भर जाने पर मुँह बंद रखते हुये हुए नाक के द्वारा इस प्रकार श्वास छोड़े कि धीरे-धीरे पेट बैठता चला जाय।

नाक से श्वास लेने और छोड़ने का समय एक सा होना चाहिये। परन्तु यह समय घड़ी से मापना ठीक नहीं। प्रभु की प्रार्थना से एक चरण-पद लेकर मन में एक बार जब तक पाठ होता रहे, तब तक श्वास ले; और पश्चात् वही पाठ एक बार होता रहे, तब-तक श्वास छोड़े। पश्चात् जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाय, वैसे-वैसे प्रार्थना के पाठ की मात्रा बढ़ाता जाय। उसका दूसरा चरण ले ले। (अथवा प्रार्थना के स्थान में भगवान् के नाम का जप करता रहे) अर्थात् जितने समय में चौबीस अक्षर का उच्चारण हो, उतने समय तक श्वास लेने और उतने ही समय तक श्वास छोड़ने का अभ्यास करे। इस प्रकार कम-से कम सात बार और अधिक से अधिक इक्कीस बार श्वास लेने छोड़ने का नियमित अभ्यास करे। यह विशेष रूप से याद रखे कि श्वास लेने में वायु नाभिपर्यन्त पहुँचता है या नहीं। इस प्रकार क्रिया करने के बाद दिन-रात यह ध्यान रक्खे कि श्वास छोटा तो नहीं हो रहा है। इसकी परीक्षा स्वयं ही की जा सकती है।

यदि यह क्रिया बराबर होती रहेगी, तो क्रिया करने वाले का मल साफ उतरेगा, पेशाब ठंडा होगा, भूख खूब लगेगी। खाया हुआ भोजन खूब पचेगा, आँख का तेज बढ़ेगा। सिर में आने वाला चक्कर और दिमाग की गरमी शान्त होगी। शरीर में शक्ति बढ़ने लगेगी।

किंतु यह क्रिया ठीक न होती होगी, तो श्वास लेने की अपेक्षा छोड़ने में समय कम लगेगा। ऐसी अवस्था में उपर्युक्त गुणों की अपेक्षा विरुद्ध परिणाम मिलेगा। यदि कभी आवश्यक कार्य वश श्रम होने के कारण श्वास जोर-जोर से चलने लगे तो घबराकर मुँह से श्वास न ले। बल्कि मुँह बन्द रखकर नाक से श्वास लेते रहने से थोड़ी ही देर में श्वास नियमित हो जायगा और थकावट दूर हो जायगी।

जैसे जैसे नाभि से श्वास निकालकर बाहर हवा में फेंका जायगा और बाहर हवा में शुद्ध हुए श्वास को नाक के द्वारा नाभिपर्यन्त पहुँचाया जायगा, वैसे-वैसे विष्णुपादामृत की प्राप्ति अधिकाधिक होती जायगी; इस प्रकार दीर्घ जीवन प्राप्त करने में सफलता मिलेगी।

प्रणव-मन्त्र के जप से आयु बढ़ती है। तैलधारावत् प्रणव-मन्त्र का जप श्वास-श्वास में चलना चाहिये। नाड़ी के साथ प्रणव-मन्त्र का जप करने से बहुत शीघ्र प्रगति होती है। श्वास-प्रश्वास की गति तालबद्ध बनती है। धातु और रसायन के विशेष योग से विद्युत्-शक्ति प्रकट होती है इसी प्रकार श्वास-प्रश्वास के साथ प्रणव-मन्त्र का जप करने से अमोघ-शक्ति उत्पन्न होती है। अखण्ड गति से प्रणव मन्त्र का जप करने से मन उसमें स्थिर हो जाता है। जैसे चुम्बक के सामने लोहा रखने से तुरन्त ही चुम्बक लोहे को खींच लेता है, केवल चुम्बक की शक्ति के पास लोहा आना चाहिये, इसी प्रकार अखण्ड प्रणव-मन्त्र का जप चुम्बक के समान है, चित्तवृत्तियाँ लोहे

के समान हैं। ये दोनों समीप आ जायें तो प्रणव-मन्त्र का जप वृत्तियों को खींच लेता है और वृत्तियाँ प्रणवमय बन जाती हैं। इस प्रकार दीर्घजीवन और प्रभु प्राप्ति की साधना दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हैं और जीवन का ध्येय सफल हो जाता है।

सिद्ध पुरुष की कृपा भी इसमें विशेष रूप से सहायक होती है। यदि सिद्धपुरुष की कृपा हो तो दीर्घ-जीवन और प्रभु की प्राप्ति दोनों ही सत्वर प्राप्त होते हैं।

मुमुक्षु आत्मसाक्षात्कार तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। परन्तु इसका साधना भी शरीर ही है। यदि बीच में ही शरीर का पतन हो जायें तो अन्तिम लक्ष्य-स्थान तक पहुँचने में दीर्घकाल तक समय बिताना पड़ता है। बार-बार जन्म लेने और देह त्याग करने में बहुत समय नष्ट होता है। अतएव किसी भी उपाय से शरीर सशक्त और स्वस्थ बना रहे तथा दीर्घ काल तक टिका रहे तो प्रभु की प्राप्ति में सहायक हो सकता है। शरीर को बलवान् बनाने में शास्त्रोक्त औषध और रसायन का सेवन भी बहुत काम करता है। कायाकल्प के प्रयोग से शरीर को फिर तरुण-जैसा बलवान् बनाया जा सकता है। अमृत पीने से यह देह अमर हो जाता है। बहुत से योगियों का मत है कि हमारे परमगुरु मत्स्येन्द्र नाथ, गोरखनाथ आदि आज भी अपने असली शरीर से विद्यमान हैं। अश्व-त्थामा के विषय भी यही बात कही जाती है। अतएव औषध और रसायन का सेवन करने से अपने ध्येय में पर्याप्त सहायता मिलती है।

मिताहार शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मिता-हार का अर्थ है—पेट में दो भाग भोजन से, एक भाग जल से भरे और एक भाग हवा के लिये खाली रक्खे। खाना तभी खाना चाहिये जब भूख लगे

आयु की वृद्धि एवं जीवन के परम लक्ष्य प्रभु की प्राप्ति के उपर्युक्त छः उपायों का श्रद्धा तथा दृढ़तापूर्वक सेवन करके जीवन को सफल बनाना चाहिए।

कराल काल की क्रीड़ा

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम् ॥

जो प्राणी आज ही जिस शरीर में हंस रहे थे, सुन्दर-सुन्दर पद गा रहे थे उत्तम-उत्तम श्लोकों का पाठ कर रहे थे वे न जाने आज ही कहाँ अदृश्य हो गये! अब उनका पञ्च भौतिक शरीर दीखता ही नहीं! हा कराल काल की कैसी कष्टप्रद क्रीड़ा है?

धारणा

श्री किशोरीलाल शास्त्री (झांसी)

इस सृष्टि परम्परा में सभी जीव सुख की खोज में निरन्तर प्रयत्नशील हैं। क्या गृहस्थ ? क्या विरक्त ? योगी, यती, सती, संन्यासी, वैरागी, साधु-महात्मा, वैज्ञानिक, व्यापारी, कर्मकाण्डी, आस्तिक, नास्तिक सभी राजा-रंक सुख की ही दिशा में पैर बढ़ाये चले आ रहे हैं। इसी से सुख-दुःख की अनेक परिभाषायें देखने व सुनने को मिलती हैं।

सर्वं परवशं दुःखं,
सर्वं आत्मवशं सुखम्।
एतद् विद्यात्समासेन,
लक्षणं सुख दुःखयोः॥
संतोषामृत तृप्तानां,
यत्सुखं शान्त चेतसाम्।
कुतस्तद्धन लुब्धानां,
इतश्चेतश्च धावताम्॥

इन दोनों श्लोकों में सुख की परिभाषा है प्रथम में स्वाधीनता को सुख और पराधीनता को दुख बताया है। पराधीनता माने बंधन में रहना और स्वाधीनता माने बंधन में न रहना अर्थात् स्वतंत्र रहना। परन्तु बंधन में कौन रहता है ? और कौन सुख दुख का अनुभव करता है ? यह भी ज्ञातव्य है। तो शास्त्रों के अनुसार और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर मन को ही सुख दुःख का अनुभव कराने वाला माना गया है न्याय शास्त्र में मन को ११ वीं इन्द्रिय मान कर सुखादि की प्राप्ति का साधन माना है।

'सुखाद्युपलब्धि साधनं इन्द्रियं मनः'

परन्तु मन को ५ ज्ञानेन्द्रियों और ५ कर्मइन्द्रियों के समान अनित्य (नाशवान) नहीं माना है। प्रत्युत नित्य ही माना है। इस से मन और आत्मा का (नित्य) समवाय संबंध माना है। अतएव दर्पण से परावृत्त होने वाले प्रकाश के समान सुख-दुःख भी मन से परावृत्त होकर जीवात्मा पर अपनी छाया डालते हैं तभी पूर्ण शरीर में व्याप्त चैतन्य सुखी-दुःखी प्रतीत होने लगता है। वास्तव में जीवात्मा पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जैसा कि मन पर सुख-दुःख का प्रभाव मन को बलवान और कमजोर बनाने वाला होता है। इससे मन के संबंध में ही सब ने विचार किया है।

मन एव मनुष्याणां
कारणं बंध मोक्षयोः।
बंधाय विषयासक्तं
मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥

अर्थात् मन ही मनुष्यों को (जीवात्मा को) बंधन और मोक्ष प्राप्त कराने वाला है अर्थात् दुःख-सुख का अनुभव करानेवाला है। इन्द्रियों के विषयों रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श

में आसक्त मन बंधन (दुख) और इन पांचों विषयों में विरक्त मन मोक्ष (सुख) का अनुभव कराता है। परन्तु यथार्थ में मन भी दुख नहीं चाहता। इन्द्रियों के विषयों में भी अत्यन्त क्षणिक सुख का अनुभव होता है। इससे बार-बार उनकी ओर दौड़ता है इसी क्षणिक सुख की तृष्णा बंधन में डाल देती है। परन्तु आप देखें कि मन की चाह सुख ही है। दुःख-सुख की परिभाषा वाले उपरोक्त प्रथम श्लोक में पहिले दुःख की परिभाषा किसी ने (सर्व पर-वशं दुःखं) फिर सुख की परिभाषा (सर्वमात्म-वशं सुखम्) लिखी है। परन्तु उत्तरार्ध में उपसं-हार करते हुए पहिले सुख बाद में दुःख लिखा (लक्षणं सुख दुःखयो)।

और दूसरे श्लोक में तो दुःख का नाम भी नहीं लिया गया। उसमें तो पूर्वार्ध में संतो-षामृततृप्ति से प्राप्त शांति से चित्त की चंचलता का शांत हो जाना ही सुख माना है। और उत्तरार्ध में चित्त की चंचलता का प्रदर्शन कर सुख प्राप्ति को असम्भव ही कहा गया है। इससे यह सिद्ध है कि चित्त की चंचल वृत्ति की शांति के बिना सुख नहीं मिलता। अतएव सब सुख चाहने वाले को चित्त की वृत्ति की चंचलता को रोकने का ही प्रयत्न करना है।

'योग दर्शन' में इसी चित्त की वृत्ति की चंचलता को रोकने के प्रयत्न को ही 'धारणा' कहा गया है। जो कि योग के आठ अंगों में छठवां अंग है। क्षणिक धारणा से क्षणिक सुख मिलते हैं और स्थायी धारणा से स्थायी सुख अर्थात् सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है।

देशबंध चित्तस्य धारणा

अर्थात् मन का एक ही स्थान पर रोक देना धारणा कहलाती है। सांसारिक प्रत्येक कार्य में भी हमें धारणा से ही सफलता मिलती है। महायोगेश्वर भगवान श्रीकृष्णजी ने उद्धव के प्रति इन धारणा सिद्धियों का विस्तार से वर्णन किया है, जो श्री मद्भागवत के एका-दशस्कंध के १५ वें अध्याय में है। पाठकों योग प्रेमियों के आगामी अंकों में इनका स्पष्ट वर्णन किया जायगा।

परन्तु इससे पहिले एक बात कहना अत्यावश्यक समझता हूं। किसी अनुभवी महा पुरुष ने कहा है 'मरणं बिन्दु पातेन, जीवनं बिन्दु धारणात्' अर्थात् ब्रह्मरंध्र से जो अमृत बिन्दु क्षरण होता है यदि जिह्वा योहन कर खेचरी मुद्रा के द्वारा उस अमृत बिन्दु का पान कर लिया जाय तो दीर्घ जीवन यानी इच्छा मृत्यु योगी को प्राप्त होती है और यदि ऐसा योगाभ्यास के द्वारा न किया गया तो अल्पायु तो निश्चित है ही।

दूसरा अर्थ यह है कि यदि अखण्ड ब्रह्म-चर्य के द्वारा वीर्य-बिन्दु की रक्षा कर योग क्रियायें की तो दीर्घायु प्राप्त होगी। और यदि वीर्य का निःसरण होता रहा तो न तो योग ही सिद्ध होगा और दीर्घायु की कौन कहे अपनी निश्चित आयु को भी नहीं भोग सकेगा। अल्पायु में ही शरीर छोड़ देना पड़ेगा—जो कि कभी न पूरी होने वाली हानि होगी। वेद में लिखा है –

"न चे द्दिहा वेदीन्महती विनष्टिः"

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी इसी का सुन्दर भाव लिखा है—

साधन धाम मोक्षकर द्वारा।
पाय न जो परलोक सुधारा॥
सो परत्र दुख पावई,
सिर धुनि धुनि पछताय।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं,
मिथ्या दोष लगाय॥

अब हमें देखना है—कि वीर्य का निःसरण कैसे हो जाता है? इस संबंध में प्राचीन अन्वेषकों ने बहुत परिश्रम के बाद निर्णय किया है कि कामदेव ही इसका मुख्य कारण है। कामदेव का दूसरा नाम मनोभव है। और मन नपुंसक है फिर मन मे कामदेव कैसे उत्पन्न हुआ? तो इस संबंध में तुलसीदास जी ने लिखा है कि "काम के केवल नारि बल"। अर्थात स्त्री के संसर्ग से नपुंसक मन में भी कामदेव की उत्पत्ति हो जाती है। इसी से अनुभवी महात्माओं ने साधकों को सावधान करते हुए लिखा है—

"नेक्षे च्चित्रगतामपि"
'न स्पृशेद्दार वीमपि'

अर्थात् साधक को नारी जाति का चित्र भी नहीं देखना चाहिये और काष्ठ, मृत्तिका, पत्थर की बनी हुई स्त्री की मूर्ति को न छुए। श्री मद्भागवत में मन्मथमथन महा योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण जी भी उद्धव को भक्तियोग तथा अष्टांग योग का विधान बताते हुए स्त्री जाति से दूर रहने का और स्त्री-सेवियों से दूर रहने का बड़े जोरदार शब्दों में आदेश देते है।

स्त्रीणां स्त्रीसंगिनां संगं,
त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्।
क्षेमे विविक्त आसीनः,
चिन्तयेन्मा मतन्द्रितः॥१॥
न तथास्य भवेत्क्लेशो,
बन्धश्चान्य प्रसंगतः।
योषित्संगाद्यथा पुंसो,
यथा तत्संगि संगतः॥२॥

मुमुक्षु पुरुष मन को स्थिर कर विघ्न-रहित, पवित्र एकान्त स्थान मे बैठ कर, सावधान रहते हुए मुझ पर ब्रह्म का ध्यान करे। तथा स्त्रियों का संग और स्त्रियों के साथियों का सम्पर्क दूर से भी न होने देवे।

मुमुक्षु पुरुष को जैसा क्लेश और बंधन स्त्री के साथ संपर्क करने से और स्त्रियों के साथियों के सम्पर्क से होता है वैसा क्लेश और बन्धन किसी भी और दूसरे के संपर्क से नहीं होता।

श्री उद्धव जी जैसे परमभक्त ज्ञानी साधक को भी महायोगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण का यह आदेश देना साधकों के लिये सब से बड़े खतरे से बचने के लिये दृढ़ चेतावनी है। केवल ज्ञानी का पतन हो जाना तो साधारण बात है

ज्ञान की पंथ कृपाण कि धारा।
परत खगेश न लागै बारा॥

क्योंकि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये छः शत्रु सदा साधक के गिराने का प्रयत्न करते रहते हैं और वह परब्रह्म भी उसकी तरफ से निश्चित रहता है जैसे माता पिता अपने युवा उद्योगी पुत्र की तरफ से लापरवाह हो जाते हैं, और जिस अपने भक्त की वह भगवान् इस तरह रक्षा करता है जैसे दुधमुहें बच्चे की माता रक्षा करती है। या रोगी की वैद्यराज रक्षा करते हैं, उसे कुपथ्य सेवन को मना करते हैं।

करौं सदा तिन की रखवारी,
जिमि बालकहिं राखु महतारी।
कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी,
बैद न देइ सुनहु मुनि योगी॥
जिहि विधि होइहि परम हित,
नारद सुनहु तुम्हार,
सोइ हम करब न आन कछु,
बचन न मृषा हमारा॥

भला अब जब नारद जी को भगवान् इस महान् खतरे से इस प्रकार बचाते हैं, इसके संसर्ग से दूर कर रहे हैं जिसके बदले में भगवान् को स्वयं नारद जी का शाप स्वीकार कर सीता जी के वियोग में पागलों की तरह बन में अभिनय करना पड़ा। यदि हम लोग अपने ज्ञान के मिथ्याभिमान वश उस खतरे को दूर से ही त्याग न करेंगे तो हमारा लक्ष्य से पतन निश्चित है। अतः हमें अपने अध्यात्म साधन पथ में बहुत सावधानी से पग बढ़ाना चाहिये।

शिवाः पंथानः सन्तु॥

याद रक्खो

याद रक्खो वहाँ शान्ति नहीं रहती और न रह सकती है जहाँ आत्मा की आवाज नहीं सुनी जाती। मनुष्य जब गाढ़ निद्रा में आकर सो जाता है तो वह यदि दुःखी है तो अपने को दुःखी नहीं समझता, यदि रोगी है तो अपने को रोगी नहीं समझता, यदि वह राजा या रङ्क है तो अपने को राजा या रङ्क नहीं समझता। निष्कर्ष यह है कि वह निद्रा के आनन्द में इतना मग्न है कि दुनिया की कोई चीज भी उसे दुःखी या सुखी नहीं बना सकती यही अवस्था उस अभ्यासी की हो जाती है जो प्रभु प्रेम में मग्न है और जिसका चित्त उसकी भक्ति में लीन हो रहा है। इस अभ्यासी को भी अब कोई वेदना वेदना नहीं है; कोई सुख-दुःख नहीं है। वह इन सबसे ऊँचा हो चुका है।

—महात्मा नारायण स्वामी

सत्संग-सुधा

श्रीचन्द्रहास शर्मा एम.ए.एम.एड. साहित्याचार्य

एक घड़ी आधी घड़ी
आधी की पुनि आधि।
तुलसी संगत साधु की
हरै चित्त की व्याधि॥

साधु संग से चित्त वृत्तियों का परिष्कार होकर मन में विमलज्ञान का प्रकाश होता है। वे लोग धन्य हैं जिन्हें सिद्ध महात्मा तथा तत्ववेत्ता संतों का सत्संग मिल जाता है। कृपा सिन्धु की अहैतुकी कृपा से ही सत्संग का सुयोग मिल पाता है। तुलसी ने उचित ही कहा है—

बिन सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

सत्संग रूपी अग्नि से लोह बुद्धि की मलिनता नष्ट हो जाती है तथा जितनी देर महापुरुषों का सान्निध्य प्राप्त रहता है उतनी देर मन सभी प्रकार के विकारों से रहित होकर योग की उच्च भूमि पर आरूढ़ हो जाता है। जो करील और बांस की तरह हैं उनकी बात दूसरी है। अन्यथा सत्संग में ऐसी पीयूष धारा प्रवाहित होने लगती है कि सभी प्राणियों का मन आनंद-सागर में निरन्तर डूबता ही चला जाता है। नवधा भक्ति में प्रथम एवं प्रथम कोटि की भक्ति 'प्रथम भगति संतन कर संगा' इस अर्द्धाली के अंश में सत्संग को माना है। एक सिद्ध महात्मा के सत्संग के अमृत कण साधकों के निमित्त यहाँ उधृत कर चन्दन घिसने का कार्य कर रहा हूं जिसमें घिसने वाले को भी चन्दन का शैत्य तथा सुगन्धि प्राप्त होती ही है। लगाने वाले का भी उनसे अंग-अंग पुलकित हुए बिना नहीं रहता।

दुस्सहनीय शीत में एक सिद्ध पुरुष कटिवस्त्र तथा उत्तरीय पहने कुशासन पर बैठे अपने भक्त जनों को सम्बोधित कर कह रहे थे:—

पहले भूख पैदा करो फिर स्वाद अपने आप आने लगेगा। भूख कब पैदा होगी जानते हो। कम खाओ या व्रत करो अर्थात् विषयों से विमुख रहो और सद् वस्तु को ग्रहण करने की इच्छा को बलवती बनाओ। केवल शास्त्र विहित कर्म करो यही कम खाना है। स्वाद का अर्थ समझे? जायका रस नहीं—स्व-अपना आत्मा की याद आने लगेगी। भजन में ध्यान लगाने लगे तो ध्यान में आनन्द आने लगेगा। महाराज मन तो लगता ही नहीं। कैसे लगे? एक भक्त ने कहा। महात्मा बोले घोड़े को बांध के रखो तोभी वह इधर-उधर हलचल करता ही रहेगा। यदि उसके आगे-पीछे के पैर बांध दो तो भी वह वश में नहीं होगा। फिर कैसे होगा? समझे? उसे

सवार को सौंप दो और फिर जहाँ जाये जाने दो। उसकी गति का नियंत्रण उसके सवार के हाथ में है। और किधर उसे जाना है यह इच्छा भी सवार के आधीन है। अर्थात् आत्मा बुद्धि रूपी सवार के हवाले मन रूपी घोड़े को कर दो और निश्चिन्त हो जाओ।

कितने पहाड़ नदी वृक्ष हैं मार्ग में यहाँ से सैकड़ों मील दूर है तुम्हारा घर। पर जब तुम घर का ध्यान करो तो दूरी बाधक होती है? नहीं। पर्वत बाधक होत है? नहीं। फिर जो इतनी भी दूर नहीं जितनी दूर घर और उसकी दीवार। उसको देखने में कौन बाधक हो सकता है? भूख चाहिये स्वाद तो आप ही आप आने लगता है।

जिसके मन में भूख है, जिज्ञासा है, वह रास्ता पा ही जाता है। उसे भटकते देखकर उसकी तीव्र भूख देखकर कोई न कोई उसे अगम मार्ग का रास्ता बता देता है और एक दिन वह लक्ष्य को पा जाता है। पर्वत की चोटी पर हरी पैदा करने के लिए पानी को चारों ओर से रोक कर बड़े फोर्स से ऊपर चढ़ाना होगा। मन जल की तरह नीचे जाने वाले स्वभाव का है। जल आप से आप गटर में नीचे और नीचे दौड़ता चला जाता है पर ऊपर चढ़ाने के लिए निरति की सुरति में अन्तर्मुखी करना होगा तभी पर्वत पर हरी-हरी खेती हो सकती है। पर्वत क्या है? यह मनुष्य शरीर सब शरीर और योनियों से श्रेष्ठ, ऊँचा पर्वत है जिसमें हरियाली सुख, शान्ति आत्मानन्द ऊर्ध्वरेता होने से ही हो सकेगा।

बाजार में तो निकल पड़े हो और सुबह से शाम तक भाव पूछते रहे हो। अच्छे और बुरे की परख करते रहे। केवल भाव पूछने से क्या कुछ हाथ लगेगा। जब तक खरीदने के लिए कुछ देने को तैयार नहीं हो तब तक सौदा नहीं पट सकता। मूल्य दो और वस्तु लो। एक चीज देकर तुम्हें दूसरी चीज मिल सकती है आप को दो और आप को खरीद लो। अपने को देने से यदि डरते रहो गे तो आप हाथ नहीं लगेगा। केवल भाव पूछने से कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। यदि खरीदना नहीं आता तो उन्हें देखो जो कुछ खरीद रहे हैं। दाता खरा माल तभी देगा जब दाम खोटा न हो। तुम कहोगे कभी-कभी सौदा उधार भी तो मिल जाता है! मिल अवश्य जाता है परन्तु उधार का सौदा सदा महंगा होता है। न जाने कब उधार माँगने वाला आ जाय। हर समय भय बना ही रहता है।

भजन प्रार्थना से तुरन्त दुःख दूर करना चाहते हो। दुःख दूर न हुआ तो शिकायत करते हो। बताओ तुम रात-दिन कुछ न कुछ ड्यूटी करते हो नौकरी पेशा करते हो। इसमें किसी पर तुम क्या अहसान करते हो। तुम्हारा काम है उसे तुम करते हो। बन्दर की तरह नाचते रहते हो उस सेवा और नौकरी का फल भी तो तुम्हीं को प्राप्त होता है। तुम्हारे पड़ौसी को थोड़े ही कुछ मिलता है फिर पड़ौसियों से अपने दुःख की शिकायत क्यों करते हो? तीस दिन काम करने के बाद ही पूरा महीना होने पर वेतन मिलता है। उससे पहले माँग कर तुम अपना

अज्ञान क्यों प्रकट करते हो। अपना पेट भरने के लिये तुम्हें कितनी बार मुँह चलाना पड़ता है इसकी शिकायत दूसरों से क्यों करते हो। तुम्हारा काम है। करने पर तुम्हें फल मिलेगा। न करने पर बिगड़ेगा भी तुम्हारा। अगर तुम किसी के होकर रहोगे तो वह भी तुम्हारे काम आयेगा।

अपने ट्रांस्फर को रद्द करवाने के लिये तुम आकाश-पाताल के छोर मिला देते हो। पर तबादिला रुकने वाला नहीं। आज नहीं तो कल नहीं तो परसों होगा अवश्य। योगी, भोगी, राजा, या रंक क्या किसी का शरीर रहा है। तुम्हारा बचपन का शरीर देखते-देखते बदल गया। तुम्हारे न चाहने पर भी वह बदल ही गया। अरे, बिना तबादिले के प्रमोशन यानी तरक्की भी नहीं होती। तरक्की चाहते हो तो तबादिला स्वीकार करो। तबादिले में ही नयापन आता है और नये स्थान सामने देखनेको मिलते है। जो जल तालाब में बन्द बना रहता है उसमें दुर्गन्ध आने लगती है और जो नदी बहती रहती है उसका जल पीने योग्य बना रहता है तथा वह महासागर तक अवश्य पहुँच जाता है। इसलिये तबादिले का स्वागत करो। तबादिला होने से पहले पहले क्या करते हो ? खूब माल इकट्ठा करते हो कि फिर इस देश में आना हुआ या नहीं हुआ इस शरीर का तबादिला होने से पहले ज्ञान-विज्ञान का माल इकट्ठा करो। त्याग-वैराग्य दम, शम की सम्पत्ति इकट्ठा कर लो। आगे यही चीज काम देगी। स्थान और पद का मोह छोड़ो। परिवर्तन व नवीनता का स्वागत करने लगोगे तो न फिर जरा है न मृत्यु।

महात्मा दुनिया की उल्टी रीति का वर्णन करते हुए अट्टहास करने लगे। जीवन भर शास्त्रों की बात न सुनी और न उस पर चलने का प्रयत्न किया। मुर्दे को आगम-निगम सुनाकर पंडित उसे मोक्ष मार्ग में भेजने का आकाश-कुसुम की भांति प्रयत्न करते हैं। वेद-शास्त्र का पठन-पाठन करके ही कुछ लोग समझते है कि अब हमारा कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं है। उन्हें नहीं मालूम कि दाता आगम-निगम की पहुँच से परे है न वह 'हाँ' में है और न वह 'ना' में। 'हाँ' और 'ना' के बीच में वह शून्य गगन में बिना सूर्य के ही प्रकाशित है बिना तेल के दीपक की लौ वहाँ हर क्षण जलती रहती है। सुखमन से वहाँ जाने का गुप्त द्वार है। वहाँ पहुँचकर ब्रह्माण्ड गेंद की तरह लगता है। अपनी परछाई में क्या कोई ताकत हो सकती है। ताकत 'आप' में है। दुनिया की उल्टी रीति है। जिसने उस मार्ग को खुद नहीं देखा उससे मार्ग का पता पूछते है। बिना चले ही पहुँच जाना चाहते हैं। हाँ जब बिना पग, बिना हाथों के हो जाओगे तो बिना चले भी वहाँ पहुँच सकते हो। इन्द्रियातीत को जानने के लिये इन्द्रियों को छोड़ कर आगे बढ़ो। तभी अतीन्द्रिय को पहचान सकोगे। दुनिया की उल्टी रीति है कि जो इन्द्रियों से परे है उसे इन्द्रियों से ही जानना चाहते है। भला वह

इन्द्रियों से गोचर कैसे हो सकता है। अणु को अणु-वीक्षण यंत्र से ही देख सकते हैं। आँखों के चश्मे से नहीं देख सकते हैं। दुनिया की उल्टी रीति है। लोग कहते हैं हमने दुनिया भर में चक्कर लगाया पर हमें शान्ति कहीं नहीं मिली। चक्कर काटने से कभी शान्ति मिलती है। स्थिर हो कर बैठो तभी शान्ति मिल सकती है। तुम भी तो दुनिया के अन्दर हो और दुनिया की सभी वस्तुओं से पास हो फिर तुमने अपने में उसे क्यों नहीं खोजा। खोजोगे तो उसको क्या मैं दीवाने को उसका दीदार जरूर होगा। बिना दीवाना बने हुए प्रेम सिर्फ ऊपरी कवायद है। उसके खजाने में कमी नहीं है। कोई लेने वाला ही नहीं। दुनिया की उल्टी रीति है। सड़क से पहाड़ की चोटी पर चढ़ना चाहते हैं। पगडंडी से अकेले चलोगे तभी चढ़ पाओगे।

दर्शन करने आये हुए महानुभावों में से एक सज्जन ने महात्मा से पूछा महाराज क्या करें और कैसे करें जिससे शान्ति मिले। महात्मा सहज भाव से बोले-पहले खेत को तैयार करो। बीज की चिन्ता न करो। खेत तैयार हो गया तो बीज कहीं न कहीं से आकर उसमें अवश्य गिर जायगा। खेत यदि तैयार नहीं तो उत्तम से उत्तम बीज भी तुम्हारे किस काम आवेगा। पहले खेत को जोतो। क्या करना है इसे जानने में अधिक समय नहीं लगता। करना नहीं हो पाता। करना ही आप की बात ही बन जाय। सत्संग करते रहो तो क्या करना है और कैसे करना है दोनों प्रश्न एक ही उत्तर से हल हो जायेंगे। खेत जुता हुआ होगा तो बीज यदि अच्छा न भी हुआ फिर भी उपज अच्छी होगी। भूख पैदा करो, स्वाद भूखे होने पर ही आता है। सूखी रोटियों में भी अत्यधिक आनन्द भूख होने पर आने लगता है। स्वाद रोटियों में नहीं होता अपनी वृत्ति में होता है। आप आप को ही पहचानने का प्रयत्न करता है।

जब आप मुझे नमस्कार करते हैं तब आप आप को ही नमस्कार करते हैं। साधु ने खड़े होकर अपनी छाया की ओर नमस्कार किया। देखो न मैं किसे नमस्कार कर रहा हूँ? अपनी छाया को ही न। मैं जैसा कर रहा हूँ मेरी छाया भी वैसा ही कर रही है। आप,आप को नमन करता है। आप जैसा करते हैं छाया रूपी संसार वैसा ही करता हुए दिखाई पड़ता है।

यह संस्कार आप की छाया है अपने ही हाथ में हैं इस को अपने अनुकूल और प्रतिकूल बनाना सत्संग इन उद्बोधन वाक्यों के साथ समाप्त हो गया और महात्मा के वचनों के शान्त होते ही एक दम नीरवता और शान्ति, छा गई चारों ओर। सभी को लगने लगा मानो उनका मन गहरी जलराशि में निमग्न होता हुआ चला जा रहा है। धन्य है। ऐसा एक ही क्षण! जीवन में ऐसे क्षण कब मिल पाते हैं—जब हम अपनी कारागार से निकल कर बाहर भ्रमण कर का साहस करें।

संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है

(महात्मा श्री आनन्दसागर)

कहते हैं, कोई परदेसी किसी शहर में सैर के विचार से गया, तो वह परदेसी शहर में न पहुँच कर उस नदी के किनारे ही पहुँच पाया था, कि जिसके किनारे पर वह बहु सुन्दर शहर आबाद था। शहर की आबादी नदी के किनारे बड़े ऊँचे वृक्षों से ढक जाने के कारण नजर नहीं आती थी। तब ऐसी हालत में उस परदेसी ने सड़क पर बैठे हुये किसी साधु से पूछा कि सन्त जी, बस्ती किधर है? तो उस त्यागी साधु ने एक लम्बी दीवार की ओर इशारा करके कहा कि इस दीवार के उस तरफ बस्ती है। ऐसा सुन कर जब उस परदेसी ने दीवार से उस तरफ जाकर देखा तो क्या देखता है कि वहाँ एक तरफ श्मशान है कि जहाँ सैकड़ों लाशें जलाई जा रही है और दूसरी तरफ एक कब्रस्तान है कि जहाँ लोग मुर्दों को कबरों में दबा रहे हैं। इस भयंकर दृश्य को देख कर वह परदेसी लौट कर उस साधु से बोला कि साधु जी! आप साधु होकर भी झूठ बोलते हैं। मैंने पूछा था आप से बस्ती मगर आप ने बस्ती न बतला कर बता दिया श्मशान और कब्रस्तान। परदेसी की बात सुन कर साधु बोला कि ऐ सज्जन? हमने दुनिया को छोड़ कर यह बात जानी है कि जो आपकी नजर में शहर है वह हमारी निगाह में उजाड़ है, और यह कब्रस्तान और श्मशान ही हम फकीरों की निगाह में बस्तियाँ है क्योंकि जो भी शहर से उजड़ कर यहाँ आता है वह श्मशान या कब्रस्तान में मुस्तकिल रहाइश रख लेता है, हमने शहर में बसने वाले तो उजड़ते देखे है। और शहर की तरफ से तो श्मशान में आते देखे है मगर श्मशान या कब्रस्तान से कभी कोई भी व्यक्ति श्मशान से शहर की तरफ जाते हुए नहीं देखा। इसलिये हम दुनिया के त्यागी फकीर तो शहरों को उजाड़ समझते है और श्मशान या कब्रस्तानों को बस्तियाँ। अब रहे दुनिया वाले! वह चाहे जो भी अन्दाजा लगायें हम साधुओं के विचार में तो दुनिया की हर वस्तु के पीछे पैदा होना और नाश होना अन्धेरे और उजाले की तरह लगा हुआ है। दुनिया की हर वस्तु के साथ एक दिन ऐसा भी आना है कि वह एक दिन कुछ होती है, तो एक दिन कुछ और ही बन जाती है। और अन्त में वह एक महाशून्य में विलीन हो जाती है।

साधक-भाव

श्री वीरेन्द्रसिंह वर्मा, एम. एस. सी. कृषि०
अध्यक्ष कृषि-विभाग, रा० कि० डिग्री कालिज, शामली

×•—•×

सृष्टि का नश्वर रूप क्षण-क्षण बह रहा है। दिन-रात इस भयानक संसार की हमारे चारों ओर, बाहर-भीतर भगदड़ मची हुई है। हमारे अन्तःकरण में एक ओर 'सद्गुण' तो दूसरी ओर 'दुर्गुण' रूपी सेना एक दूसरी के आमने-सामने खड़ी है। हर पल इनमें संघर्ष है। युद्ध-स्थल कुरुक्षेत्र हमारे बाहर भी है और भीतर भी। इस युद्ध का शुभ अन्त तो 'मुक्ति' है जो भगवत् चेतना में प्रवेश किये बिना प्राप्य नहीं है। अब प्रश्न यह होता है भगवत् चेतना में जाना कैसे बने ?

भागवत् धर्म में अग्रसर होने वाले साधकों को एक स्थायी और मजबूत भूमिका पर खड़ा होना पड़ेगा (१) चित्त की एकाग्रता (२) विशुद्ध भक्ति, (३) दुर्जन में भी परमेश्वर के दर्शन, (४) सद्गुणों का संचय और दुर्गुणों का निरोध तथा (५) कर्म और उसके फल का सर्वांग पूर्ण समर्पण आदि योग साधना की इमारत के दिव्य भवन हैं और प्रत्येक भवन में तत्त्वज्ञान और उपदेशों के जंगल के जंगल भरे पड़े हैं— हर जगह समाधि लगाकर बैठने की गुंजाइश है। साधक को चाहिये कि जब वह योग के सम्बन्ध में बात करे तो योग-सागर पर तैरे और जब अकेला रहे तब इस अमृत सागर में डुबकी लगाकर बैठ जाय। साधक को अपनी समस्त इन्द्रियों पर पहरा बैठा देना होगा। इन्द्रियों का स्वेच्छाचार भीतरी मालिक को सहन नहीं होना चाहिये। उसकी इन्द्रियों पर धाक रहनी चाहिये।

आज दुनिया में 'ऊँची-श्रेणी' के साधकों की बहुत बड़ी संख्या होती जा रही है। युक्ति के धुर्त्त और अशान्तिमय राज्य में रह कर अपने कोरे पाण्डित्य—तर्क और अक्षम युक्ति के सहारे वे परमेश्वर को अन्धेरे में टटोलते हैं। अनन्त शब्द-राशि और कोरे तर्क-वितर्कों के घोर जंगल में भटके हुये ये लोग जितनी जल्दी नास्तिकों और जड़वादियों के दल में आकर शामिल हो जाँय संसार का उतना ही मंगल है। आज तक एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है कि कोई आध्यात्मिक दिग्गज अज्ञानता की इस ऊसर भूमि से उपजा हो। धर्मानुष्ठान और आध्यात्मिक अनुभूति का तो एक कण भी ढेरों थोथी पोथियों के ज्ञान से कहीं बढ़कर है। इस लिये साधक को चाहिये कि बन्द करले अपना मुँह, खोल दे अपने हृदय के कपाट, जिससे सत्य की शुभ्रउज्ज्वल किरणें भीतर प्रवेश कर सकें और चले उन भारत गौरव योगियों की शरण में जिनके प्रत्येक शब्द के पीछे प्रत्यक्ष अनुभूति का बल है।

अपना आध्यात्मिक जीवन जागृत करने और उसकी उन्नति वेगवती करने के लिये साधक को एक 'संजीवनी शक्ति' की आवश्यकता होती है जो उसे पुस्तकों के अम्बार में आंख फुड़ाकर कभी प्राप्त नहीं हो सकती। इस शक्ति की प्राप्ति तो एक आत्मा एक दूसरी आत्मा से ही कर सकती है।

जिस व्यक्ति की आत्मा से दूसरी आत्मा में शक्ति का संचार होता है वह 'गुरु' कहलाता है और जिसकी आत्मा में वह शक्ति संचरित होती है उसे 'शिष्य' कहते हैं। गुरु शक्ति सम्पन्न हो और शिष्य भी उसे ग्रहण करने योग्य हो तब प्रकृत धर्म का अपूर्व विकास होता है। जब ग्रहीता की आत्मा में धर्म प्रकाश की आकर्षण शक्ति पूर्ण और प्रबल हो जाती है तो इस आकर्षण से आकृष्ट प्रकाशदायिनी शक्ति स्वयम् ही आ जाती है।

गुरु कृपा उतनी ही प्रबल होगी जितनी साधक की गुरु भक्ति प्रबल होगी इस लिये साधक को गुरु-चरणों में नत मस्तक हो मुक्त कंठ से प्रार्थना करनी चाहिये। 'प्रभो! मैं तेरी शरण में आया हूं। प्रभो! मुझे देह-सुख नहीं चाहिये' लोकमान्यता नहीं चाहिये, अष्ट सिद्धि नहीं चाहिये, तु मुझे के केवल अपने पाद पद्मों में विशुद्ध भक्ति दे-निष्काम विमला, अहैतुकी भक्ति दे। मुझे ऐसा बनादे कि मैं इस भुवन मोहिनी माया में कभी न फसूं और मुझे इस मायामय संसार पर काम कांचन पर कभी भी प्रेम न हो। हे गुरुदेव! तेरे सिवाय मेरा और कोई भी नहीं है। मैं भजनहीन, साधनहीन हूं। ज्ञान-भक्ति-वैराग्य हीन मुझ पर तू दया-कर और अपने पाद-पद्मों में शुद्ध भक्ति दे। प्रभो! मैं कौन हूं। मैं तो केवल तेरे हाथ की कठपुतली, तेरे हाथ का एक यंत्र हूं। तू जैसे चलायेगा वैसे चलुंगा, तू जैसे कहेगा उसी तरह करूंगा, मैं हर प्रकार से तुझ पर निर्भर हूँ। तू ही ब्रह्म, तू ही शक्ति तू ही पुरुष, तू ही प्रकृति, तू ही लीलामय, तू ही चतुर्विंशति तत्व, सब कुछ तो तू ही है।

हे गुरुदेव तू ही अनन्त सचेतन शुभ्र आनन्दमय ज्योतिः समुद्र है। तेरी अदृष्ट पूर्वविज्ञान वादिनी, प्रेमावर्तशालिनी, महाओजस्विनी भाव-मन्दाकिनी के गुरु गम्भीर प्रवाह के वेग में मेरे सन्देहसिकता सेतु टूट जांय। शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव और अद्भुत प्रेम-वात्सल्य की मूर्तिमयी प्रतीक आपके दर्शन और कल्याणमय सत्संग का लाभ मुझे प्राप्त हो। प्रभो! तेरे इस अनन्य शरणागत बालक को जो कुछ कहना हो या करना हो सो तु ही कह और कर। प्रभो! मैं नहीं समझता कि मैं सीधे मार्ग से जा रहा हूं या नहीं; इसलिये मुझे जो करना उचित हो, सो तू ही करा, जो सिखाना हो सो तै ही सिखा और सदा मेरा हाथ पकड़ कर चला।"

एक समय परम कृपालु श्री रामकृष्ण परमहंस अपने प्रिय शिष्य नरेन्द्रनाथ(स्वामी विवेकानन्द) के कमरे पर पहुंचे। वहाँ पर नरेन्द्र अपने अन्य सहपाठियों के साथ परीक्षा

की तैयारी कर रहा था। बस गुरुदेव के आते ही नरेन्द्र की पुस्तकें जहाँ की तहाँ छूट गईं और दौड़कर उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। फिर गुरुदेव की आज्ञा से उनको तरह तरह के भजन सुनाकर प्रसन्न करते रहे और उस दिन का सारा समय इसी प्रकार गुरुदेव की सेवा में व्यतीत कर दिया। बहुत रात गये जब नरेन्द्र अपने गुरुदेव को मन्दिर में पहुँचाकर वापिस आया तो उसके एक साथी ने श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके मधुर कटाक्ष करते हुये कहा—नरेन्द्र आज-कल तो तुम्हें इस भोले भाले साधु के अलावा दुनियाँ में कुछ सूझता ही नहीं है, यहाँ तक कि इस अवसर पर अपनी पढ़ाई का भी तुम्हें कुछ ध्यान नहीं। नरेन्द्र उसके अन्तर्तम के भावों को तुरन्त समझ गये कि भाई हरिदास मेरे गुरुदेव को सामान्य मानता है और तपाक से उत्तर दिया—

'यद्यपि मेरा गुरु कलवार घर जाय।
तथापि मेरा गुरु है नित्यानन्द राय॥'

ज्ञान की धार पर चलने वाले नरेन्द्र की भी गुरु भक्ति में कितना मिठास, कितना आह्लाद और कितना गुरु प्रेम का सागर हिलोरें मार रहा है। योग्य शिष्यों में सर्वत्र यही 'साधक भाव' देखने को मिला है।

संसार के मिथ्या नाते

सत्य तो यह है कि संसार में मिलना और बिछुड़ना सभी कर्मवश होते हैं। कुछ पक्षी एक वृक्ष पर संयोगवश बैठे हैं। फिर वे उड़कर विभिन्न वृक्षों पर बैठ जाते हैं और पुराने सम्बन्ध भूल जाते हैं। रेलके डिब्बे में जब तक बैठना है, हँस खेलकर प्रेमपूर्वक बैठना चाहिये। फिर विभिन्न स्टेशनों पर सबको एक एक करके उतरना पड़ेगा। यदि न उतरेंगे तो डिब्बे में स्थान ही न रहेगा। संसार का खेल विचित्र है। एक व्यक्ति की मृत्यु पर एक स्थान पर रोना मच रहा है और उसके अन्यत्र जन्म लेने पर किसी माता की गोद में पुत्ररत्न पा जाता है और शहनाई बजती है। मृत्यु होने पर पुराने नाते टूट जाते हैं, जिससे इनका मिथ्यापन सिद्ध हो जाता है।

प्राण और अपान : एक वैज्ञानिक विवेचन

श्री महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज

जो श्वास बाहर जाता है उसे प्राण (Expired Air) कहते हैं और जो अन्दर आता है उसे अपान (Inspired Air)। प्राण में कारबोनिक एसिड गैस (Carbonic Acid) की औसत प्रायः ३-२८ फीसदी होती है। दिन की अपेक्षा रात्रि में यह शरीर से अधिक निकल जाता है। भूख की इच्छा, अनिच्छा, कार्बोनिक एसिड गैस के शरीर से अधिक और कम निकलने पर निर्भर होती है। शरीर के हिलाने-डुलाने व्यायाम करने चलने-फिरने भोजन करने आदि से, बैठ रहने की अपेक्षा यह गैस शरीर से अधिक निकल जाती है और इसीलिए भूख अधिक लगती है। भूख, प्यास की इच्छा भी योगाभ्यास में बाधक हुआ करती है। इसीलिये योग का तीसरा अङ्ग आसन (बिना किसी प्रकार की गति किए, शान्ति के साथ एक ढंग से बैठे रहना) ठहराया गया है जिससे भूख भी बाधक न हो सके। पातंजल योगाभ्यास के लिए पद्मासन अन्य आसनों की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

मिताहारः—

भोजन करने के बाद कारबोनिक एसिड के शरीर से निकलने की मात्रा, भोजन न करके भूखा रहने की अपेक्षा, अधिक बढ़ जाती है। सीक्वीन (Sequin) एक विद्वान् के अनुभव में यह बात आई है कि जब वह उपवास करता था तो केवल १२१० घन इंच प्राणवायु (Oxygen) काम आता था। परन्तु भोजन करने के बाद पाचन क्रिया के मध्य १६०० घन इंच प्राणवायु (Oxygen) व्यय हुआ। कारबोनिक एसिड के शरीर से कम निकलने के उद्देश्य ही से जिससे भूख बाधक न होसके योगी कभी उपवास भी करता है और कभी अल्पाहार ग्रहण करता है और मिताहारी (नियमित आहार वाला) तो उसे सदैव होना ही चाहिए। कोई कोई अभ्यासी दिन में कुछ भी नहीं खाते। केवल रात्रि में थोड़ा सा भोजन किया करते हैं। ऐसे योगी युक्त-भोजी कहलाते हैं।

कारबोनिक एसिड के निर्माता तत्त्व

जिसबोनिक एसिड गैस के शरीर से अधिक निकल जाने से भूख अधिक लगा करती है वह १२ अंश कार्बन और ३२ अंश प्राणप्रद (Oxygen) वायु से मिलकर बना करता है। यह यदि वायु में चार या पांच भी प्रति-शतक हो तो ऐसी वायु में कोई चीज भी न जल सकेगी। अस्तु अधिक प्राण-प्रद वायु के काम में आने का अभिप्राय यही हुआ कि कारबोनिक एसिड शरीर से अधिक निकला।

गुफाओं में रहकर अभ्यास करना

उष्ण ऋतु कीअपेक्षा शीतलता में शीतोष्णता (Tempraiure) में, शीत की अधिकता से भी कारबोनिक एसिड शरीर से अधिक निकलता है और इसलिए भूख भी अधिक लगा करती है। इसी कारण से पुराने योगी मांद में रहने वाले पशुओं की भांति गुफाओं में रहा करते थे क्योंकि जितना भी बाहर का शीतोष्ण प्राणियों के भीतरी शीतोष्ण के निकट होगा उतनी ही भूख कम लगेगी। कारण स्पष्ट है कि ऐसे बाह्य शीतोष्ण में शीत की मात्रा अधिक नहीं हो सकती इसीलिये भूमध्य रेखा के समीपवर्ती प्राणियों की अपेक्षा ध्रुव देश के समीपवर्ती प्राणियों को भूख की इच्छा अधिक हुआ करती है। एक बात और भी है और वह यह कि जो स्थान चारों ओर से घिरे होते है जैसे गुफा, उनमें रहने वाले कारबोनिक एसिड, उन स्थानों में रहने वालों की अपेक्षा जो चारों ओर से खुले रहते है, कम खर्च करते है। इसीलिये उन्हें भूख भी कम सताती है। इन कारणों से योगियों को छोटे द्वार वाली गुफाओं में रहना अधिक रुचिकर होता है।

कम बोलना अथवा मौनावलम्बन

यदि मनुष्य चुप रहे तो उसकी अपेक्षा नियत समय में बोलने अथवा उच्च स्वर से बोलने वाले, अधिक कारबोनिक एसिड व्यय करते है इसीलिये योगी मौन रहना अपने लिये अच्छा समझते है। इससे भी वे भूख की चिन्ता से मुक्त रहते है।

चित्त की एकाग्रता की उपयोगिता

चित्त से काम लेने की अपेक्षा उसे ध्यान विशेष, भ्रूमध्यादि में एकाग्रित कर देने से भी करबोनिक एसिड कम खर्च होता है इसलिये योगियों को चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करने से भी भूख का कष्ट कम हो जाता है।

अधिक बैठने की आदत से भूख कम हो जाती है:--

चलने-फिरने और शारीरिक परिश्रम करने की अपेक्षा चुपचाप बैठकर कुछ न करने या दिमागी काम करने से भूख कम लगने लगती है क्योंकि इसके श्वास की संख्या कम हो जाने से कारबोनिक एसिड के खर्च होने की मात्रा भी कम हो जाती है। जिन लोगों को बैठने का काम अधिक रहता है उन्हें भोजन सदैव कम करना चाहिये और भोजन में दूध या ऐसी ही कोई हल्की और दस्तावर चीजें खानी चाहियें।

जलाशय के किनारे अभ्यास की उपयोगिता:—

पृथ्वी के उस भाग मे जहां नमी अधिक हुआ करती है, वहाँ के रहने वाले सूखे भाग में रहने वालों की अपेक्षा कारबोनिक एसिड कम खर्च करते है।' इसीलिये उन्हें भूख भी कम सताती है। मनु ने अपने धर्मशास्त्र में इसीलिये जलाशय के किनारे सन्ध्या आदि के करने का विधान किया है।

योगी श्री हरिहरानन्द जी

एक साधक

सहसा मेरे मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मैं अपने बड़े गुरु भाई श्री हरिहरानन्द जी का कुछ वर्णन सिद्धयोग के पाठकों को प्रेषित करूं। हरिहरानन्द जी बलिया जिले के किसी ग्राम के निवासी हैं। पवित्र ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ। इनके माता पिता ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार इनका यथायोग्य पालन-पोषण एवं शिक्षा-व्यवस्था की। तत्पश्चात् यह अपने ग्राम में ही रह कर साधारण कृषि-कर्म कराते रहे। भाई हरिहरानन्द जी पूर्ण सदाचारी एवं संयमी थे। भाई हरिहरानन्द जी का प्रारम्भिक नाम हरिराम शर्मा था। इन्होंने युवावस्था प्राप्त करके सभी श्रेष्ठ कार्य ही किये। परहित चिन्तन और साधु सेवा की इनको बड़ी लगन थी। न तो इनकी स्वयं कुकर्म करने की वृत्ति थी और न दूसरे को कु-कर्म करते देख सकते थे। स्वभाव से यह बड़े ही साहसी एवं निर्भय थे अर्थात् अत्याचार का विरोध करने में किसी से डरते नहीं थे। यह जिस ग्राम में निवास करते थे वहाँ पर पुलिस थाना भी था। संयोग से वहाँ कुछ इस प्रकार के अधिकारी लोग आगए जो बड़े दुस्साहसी थे। गाँव वालों पर अनेक अत्याचार करते थे। भाई श्री हरिहरानन्द जी को यह सब सहन नहीं था। अतः इन्होंने बड़ी निर्भयता से उन अत्याचार करने वालों का विरोध किया। फलस्वरूप वह अधिकारी भी अब मनमाना व्यवहार नहीं कर पाते थे। इनकी यह प्रबल इच्छा रहती थी कि इनके गाँव में किसी भी प्रकार का दुष्कर्म न होने पावे। इसके लिये यह यथासम्भव प्रयत्न करते रहते थे।

श्री सद्गुरु महाराजजी की दर्शन प्राप्ति

भाई श्री हरिहरानन्द जी के पड़ोस में एक दुश्चरित्रा स्त्री रहती थी, जिसका प्रभाव गाँव के युवक और युवतियों पर बड़ा बुरा पड़ रहा था। पहिले तो भाई जी ने उसे समझा बुझा कर सन्मार्ग पर लाने का प्रयास किया। परन्तु उसका कुकर्म करने का स्वभाव बन चुका था। अतः उस स्त्री को समझ नहीं आई और वह अधिकाधिक कुकर्म में प्रवृत्त होती गई। हरिहरानन्द जी ने जब यह देखा कि इसमें सद्भाव उत्पन्न नहीं हो रहा है तो उन्हें कड़ा उपाय अपनाने का विचार करना पड़ा। फलतः एक दिन उन्होंने उस स्त्री को कड़े ढंग से ताड़ना देनी प्रारम्भ की, तब वह स्त्री जोर-जोर से रोने और चिल्लाने लगी। उन दिनों आनन्दकन्द योगयोगेश्वर सद्गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज उसी गाँव में विराजमान थे।

उस स्त्री को पिटते हुए देख कर करुणा-सागर श्री प्रभु जी को बड़ी दया आई। अपने पास आने वाले सत्संगियों से उन्होंने पूछा—यह लड़का कौन है ? यह इस स्त्री को को क्यों पीट रहा है ? सत्संगियों में से एक ने विनय पूर्वक कहा प्रभो यह ब्राह्मण बालक है और बड़ा चरित्रवान है। यह पिटने वाली स्त्री बहुत ही दुश्चरित्रा है। यह इस प्रकार की ताड़ना के योग्य ही है। इस प्रकार के शब्द सुनकर उस ब्राह्मण नवयुवक के प्रति श्री प्रभु जी का हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ और उन्होंने एक सत्संगी को आज्ञा दी। इस बच्चे को हमारे पास बुला कर लाओ। श्री प्रभु जी की आज्ञानुसार एक व्यक्ति वहाँ से उठ कर गया और हरिहरानन्द जी को श्री प्रभु जी के चरण कमलों के समीप ले आया। उनके वहाँ आने पर श्री प्रभुजी ने उनकी पीठ ठोंकते हुए कहा बेटा, तुम किसके बालक हो ? भाई हरिहरानन्द जी ने श्री प्रभु जी के सम्मुख हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक कहा मैं इसी गाँव का रहने वाला एक ब्राह्मण बालक हूं। तब मुस्कराते हुए श्री प्रभु जी ने कहा बेटा, ब्राह्मण तो बड़े दानी होते है ब्राह्मणों के कर्म वेद पढ़ना और पढ़ाना यज्ञ करना और कराना दान देना और लेना होते है। तुम यह बतलाओ कि तुमने केवल लेना ही सीखा है या कुछ देना भी जानते हो। भाई हरिहरानन्द जी ने उत्तर दिया-प्रभो! मैं ब्राह्मण हूं। आप की कृपा से मुझे दान देना भी आता है। तब श्री प्रभु जी ने कहा यदि तू दान दे सकता है तो तू हमें अपना सिर दे दे। श्री प्रभु जी के मुख से निकले इन वचनों को सुनकर हरिहरानन्द जी ने प्रसन्न मुख होकर कहा अवश्य, आप की इच्छानुसार ही दान दूंगा। परन्तु मुझे तीन दिन का समय दे दीजिये जिससे मैं घर के सारे कार्य निपटा कर तैयार हो कर आजाऊं। फिर आप बड़ी प्रसन्नता से मेरा सिर उतार लीजियेगा।

श्री प्रभुजी ने प्रसन्न मन से उसे आज्ञा दे दी। तीन दिन का अवकाश प्राप्त कर हरिहरानन्द जी अपने घर गये और अपना लेना-देना निपटा कर अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान कर दिया। फिर तलवार हाथ में लेकर तीसरे दिन नियत समय पर श्री प्रभुजी के चरण कमलों में आकर उपस्थित हो गये और विनयता पूर्वक बोले—महाराज सेवक उपस्थित है। आप बड़ी प्रसन्नता से अब मेरा सिर लेलें। किन्तु यदि आप मेरा सिर यहीं जन समुदाय के सम्मुख उतारेंगे तो इन लोगों को बड़ी भ्रान्ति हो सकती है। सम्भवतया आप को व्यर्थ कुछ कष्ट देने लगें। अतः आप नदी किनारे किसी वन में जाकर मेरा सिर उतार लें।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का हृदय उनके इन भावपूर्ण वचनों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। श्री प्रभुजी हरिहरानन्द जी को साथ लेकर वन के एक सघन कुंज में पहुंचे और बोले—यदि तुम्हारे सिर को हम उतारेंगे तो हमें ब्राह्मण-वध का पाप लगेगा अतः तुम

स्वयं ही अपना सिर काट कर हमें दे दो। श्री प्रभुजी की ऐसी आज्ञा पाकर भाई हरिहरानन्द जी ने तलवार उठाकर अपने सिर को काट देने का प्रयास किया। किन्तु ज्योंही तलवार उनकी गर्दन पर लगने वाली थी, त्योंही एक दम श्री प्रभु जी ने उनका हाथ पकड़कर तलवार छीन ली और उसे दो टुकड़े करके फेंक दी। फिर भाई हरिहरानन्द जी को अपने कण्ठ से लगा कर श्री प्रभुजी ने कहा—बेटा तेरी भक्ति की दृढ़ता से हमारा हृदय अत्यन्त प्रसन्न है बेटा, तू तत्व विज्ञ्यी महा सिद्ध होगा। योगयोगेश्वर सद्गुरुदेव श्री प्रभुजी से दीक्षा पाकर भाई जी कृतार्थ हो गये और उनका जीवन धन्य हो गया। उसी समय से उनके हृदय में दिव्य महाशक्ति का स्फुरण हुआ और वह बड़े-बड़े दिव्य दृश्यों को देखने लगे। भाई जी को ध्यान स्थिति का विकास बड़ी तीव्रता से हुआ उन्होंने दिव्य-दृष्टि पाकर अपने असम्प्रज्ञात योग की प्रथम श्रेणी में ही बहुत कुछ देख डाला है। अतल, वितल तलातल, महातल, रसातल और पाताल आदि नीचे के और भू भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् आदि ऊर्ध्व लोकों का पूर्णतया साक्षात्कार कर लिया। इनका चित्त एकाएक ही समाहित हो गया। हरिहरानन्द जी का वह नव युवावस्था का समय था अतः समाहित स्थिति को पाकर जो सिद्धियाँ उनके सम्मुख उपस्थित हुई उनका उन्होंने कई जगह उपयोग किया। कई व्यक्तियों पर उन्होंने शापानुग्रह किया।

आनन्दकन्द श्री प्रभु जी इस परम कृपा को उपलब्ध कर भाई श्री हरिहरानन्द जी का हृदय श्री प्रभु जी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा और प्रेम से भरा रहने लगा। वह प्रति-पल प्रभु जी की चरण-सेवा में लगे रहते थे। वह श्री प्रभुजी की सेवा ध्यान-दृष्टि से देख कर किया करते थे, यह उनका नियम था। अर्थात् जिस वस्तु की जिस समय श्री प्रभुजी को आवश्यकता होती थी, उसे ध्यान-दृष्टि से देख कर तत्काल उपस्थित कर दिया करते थे। जिस समय वह देखते कि श्री प्रभुजी को भूख लगने लगी है, तो पहले से ही भोजन तैयार करके रख लिया करते थे। प्यास लगने पर पहिले से जल ले आकर उपस्थित हो जाते थे। सारांश यह कि श्री प्रभुजी को मुख से कहने की आवश्यकता ही न पड़ती थी और भाई जी पहिले से ही वह वस्तु लेकर उपस्थित हो जाते थे। इस प्रकार भाई श्री हरिहरानन्द जी श्री प्रभुजी की सेवा में निरंतर तत्पर रहा करते थे। श्री प्रभु जी का हृदय उनके इस सेवा भाव से अत्यन्त प्रसन्न रहता था। फल स्वरूप उन्हों ने अनेकों अलौकिक शक्तियों को सहज ही प्राप्त कर लिया था। भाई श्री हरिहरानन्द जी के जीवन में अनेक अलौकिक एवं चमत्कारिक घटनाएं घटीं—जो उनकी अद्भुत शक्ति की परिचायक थीं। उनमें से तीन घटनाओं की चर्चा यहाँ की जाती है।

वट वृक्ष

एक बार श्री प्रभुजी नर्मदा के वनों की यात्रा कर रहे थे। उनके साथ भाई हरिहरानन्द जी भी थे। अकस्मात घूमते घामते नर्मदा के तट पर बसे एक गाँव में जा पहुँचे। उस गाँव से थोड़ी दूर वन में एक विशाल वट वृक्ष था। वट के नीचे एक सुरम्य चबूतरा बना हुआ था किन्तु बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि कोई भी यात्री वहाँ रात्रि-वास नहीं कर पाता था। उस गाँव के लोगों का विश्वास था उस जंगल में वट वृक्ष के नीचे जो भी साधु महात्मा रात्रि वास करेंगे वह अवश्य ही मर जावेंगे। श्री प्रभु जी जब उसी वट वृक्ष के नीचे रात्रि वास करने का विचार करने लगे तो गाँव वालों ने कहा—महाराज, यह वन बड़ा भयानक है। जो भी उस वट वृक्ष के नीचे रात्रि वास करता है, वह अवश्य ही मारा जाता है। कौन मार देता है—यह तो हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते। किन्तु सुनते हैं वहाँ बड़ी भारी प्रेत बाधा है। अतः गाँव का कोई भी व्यक्ति वहाँ जाने का साहस ही नहीं करता। आप साधु महात्मा हैं, यदि आप के साथ ऐसा कुछ हो गया तो हमारे गाँव पर बहुत बड़ा भार पड़ेगा इसलिये आप से विनम्र प्रार्थना है कि आप वहाँ न जाकर हमारे गाँव में ही किसी स्थान पर ठहर जांय किन्तु श्री प्रभुजी हँसकर कहने लगे—हमें तो ठहरने के लिये वही स्थान पसंद आया है तुमने वहाँ की प्रेत बाधा की बात बताकर हमें सचेत करके अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर लिया है। अब यदि हमें कुछ हो भी गया तो तुम लोगों का कोई दोष नहीं होगा।

इस प्रकार श्री प्रभुजी के मन का यही विचार दृढ़ रहा कि हम आज उसी वृक्ष के नीचे ठहरेंगे और वहाँ के उपद्रवों को दूर करके लोक-हित करेंगे। उस समय श्री प्रभुजी के साथ अन्य साधुओं की मंडली भी थी। गाँव वालों से उन्होंने भी सुन रक्खा था कि उस वट वृक्ष के नीचे महान उपद्रव होते हैं अतः उन लोगों ने भी हाथ जोड़ कर श्री प्रभुजी से प्रार्थना की—प्रभो वहाँ जाना उचित नहीं अवश्य ही वहाँ उपद्रव होते हैं किन्तु श्री प्रभुजी ने लोक हित की भावना को ही दृढ़ रक्खा और भाई श्री हरिहरानन्द जी का साथ लेकर उसी वट वृक्ष के नीचे ठहर गये। अन्य साधुओं की मंडली भय के कारण उस वृक्ष से लगभग आधे मील की दूरी पर ठहरी ताकि उन पर कोई आपत्ति न आ सके। सब कार्यों से निपट कर सब लोग शयन करने लगे। रात्रि में घटना विपरीत ढंग से घटी। उस वट वृक्ष के नीचे तो कोई उपद्रव नहीं हुआ बल्कि आधी रात के समय वे सभी साधु रोने और चिल्लाने लगे—हाय रे! हम मारे गये। कैसी आपत्ति में पड़ गये? अब हम क्या करें? उन साधुओं को दीखा कि भयंकर प्रेत समूह उन सबों को पीट रहा है।

साधुओं के उस आर्तनाद को सुनकर श्री प्रभु जी को बड़ी दया आई और उन्होंने भाई हरिहरानन्द जी से कहा—बेटा, जाओ। इन साधुओं के बीच में जाकर खड़े हो जाओ। जिससे ये बेचारे इन प्रेतों की आपत्ति से

बच सकें। श्री प्रभु जी की आज्ञा को पाकर तत्काल ही भाई हरिहरानन्द जी उन सब साधुओं के बीच में आ कर खड़े हो गये। उनके वहाँ पहुँचते ही वहाँ की सब व्याधायें शान्त हो गईं। सभी साधुओं ने श्री हरिहरानन्द जी के चरणों को पकड़ लिया और हाथ जोड़ कर कहने लगे महाराज! आज आपने हम सबों को बड़ी आपत्ति से बचा लिया, अन्यथा हम सब साधु मारे जाते। महाराज आपके हम बड़े आभारी हैं।

अगले दिन प्रातः काल गाँव वाले वट-वृक्ष के नीचे रात्रि वास करने वालों का समाचार जानने आये और श्री प्रभु जी को पूर्ण रूपेण सकुशल देख कर आश्चर्य में पड़ गये। उस साधु मंडली द्वारा इस घटना का प्रचार सारे गाँव में हो गया। सभी ग्राम श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ आने लगे—बड़ा भारी मेला सा लग गया। तब करुण सागर श्री प्रभु जी ने अपने मुखारविन्द से उन सभी गाँव वालों को आश्वस्त करते हुए कहा अब से यहाँ कोई भय नहीं रहेगा। अब यह स्थान प्रेत व्याधा से सर्वथा मुक्त हो गया है। अब जो भी साधु महात्मा चाहेंगे यहाँ निश्चिन्तता से ठहर सकेंगे। इन वचनों को सुनकर सब गाँव वालों का हृदय अत्यंत प्रसन्न हुआ और उन सब ने मिलकर वहाँ एक बड़े भण्डारे का आयोजन किया। आस पास के गाँवों के ब्राह्मणों और साधु महात्माओं को निमन्त्रण भेज दिया गया। दो तीन कड़ाव खीर तथा पूरी और साग बन कर तैयार हो गया। आमन्त्रित अतिथियों के आजाने पर ज्योंही भण्डारे की पहिली पंगत बैठाई जाने लगी त्योंही कहीं से एक उद्दण्ड प्रकृति के महात्मा निकल आये। उन महात्मा ने बड़ी साधना से भैरव जी को सिद्ध किया था। वह महात्मा प्रायः भण्डारों में जाकर भैरव जी की शक्ति से भण्डारे तुड़वा दिया करते थे। यही उनकी विशेष करामात थी। भण्डारे की सूचना पाकर वह वहाँ भी आ पहुँचे थे।

आते ही उन महात्मा जी ने गाली गलौज करना आरम्भ कर दिया। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी तो उस समय अपने डेरे में विश्राम कर रहे थे। अतः भाई श्री हरिहरानन्द जी पर ही उससे निबटने का भार आन पड़ा। भाई जी ने उस महात्मा को काफी समझाने बुझाने का प्रयत्न किया और उससे कहा—भाई तुम साधु हो। किसी दशा में भी तुम्हें ऐसा अनर्थ नहीं करना चाहिये जिससे दूसरे लोगों को हानि पहुँचे। परन्तु जितना ही भाई जी समझाते थे उतना ही उस महात्मा का अहंकार पुष्ट होता चला गया। उसने अपना खप्पर फैला कर कहा—मैं कुछ नहीं जानता पहिले मेरा खप्पर भर दो फिर अपना भण्डारा करते रहना। अन्यथा मैं वह कार्य करूँगा जिससे तुमको लेने के देने पड़ जायेंगे। अभी तुम सबों का भण्डारा करना निकलता हूँगा। उसके इन कटु शब्दों को सुनकर "अच्छा, अभी तेरा खप्पर भरे देता हूँ" ऐसा कहकर भाई हरिहरानन्द जी ने

एक छोटी सी लुटिया उठा ली और उसमें खीर भर कर उसके खप्पर में डालनी प्रारम्भ कर दी। सब लोग बड़े आश्चर्य में थे कि न तो वह खप्पर ही भरता था और न उस लुटिया की खीर ही समाप्त होती थी। ऐसा होते हुए घंटे पर घंटे बीतने लगे परन्तु कोई परिणाम सामने न आया। अन्त में भाई हरिहरानन्द जी ने अपनी योग शक्ति से उसकी शक्ति को छीन लिया। ऐसा होते ही उसका खप्पर तत्काल भर गया और उस छोटी लुटियासे अन्य सभी पात्र भी खीर से भर गये। सभी लोगों को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। वह महात्मा अपनी शक्ति को गया जानकर रो रोकर कहने लगा—महाराज मेरी शक्ति वापिस कर दो अब आप के सम्मुख कभी नहीं आऊँगा। कृपा करके इस बार क्षमा कर दें। इस भारी कोलाहल को सुनकर श्री प्रभुजी जाग उठे और वहाँ आकर सबको शान्त कर दिया। उस महात्मा को यथोचित शक्ति यह कह कर दिला दी कि आज से आगे तुम कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर सकोगे जिससे लोगों का कोई अनिष्ट हो। उसके बाद भण्डारा खूब धूमधाम से सम्पन्न हुआ और सभी ने प्रसन्न मुद्रा से भोजन किया। इस भण्डारे के उपरान्त श्री प्रभुजी वहाँ से चल पड़े और नर्मदा के तट पर आगे बढ़े।

भैरव सिद्ध महात्मा पर अनुग्रह

वहाँ से दो-चार मील आगे चलकर श्री प्रभु जी ने फिर अपना डेरा डाल दिया। वहाँ से थोड़ी दूर पर दो गाँवों के मध्य एक भैरव सिद्ध महात्मा रहते थे। वह बड़े क्रूर स्वभाव के थे। आस-पास के रहने वाले सभी लोगों को उन्होंने अपनी शक्ति से तंग कर रक्खा था। भाई हरिहरानन्द जी ने उस महात्मा के विषय में थोड़ी बहुत बातें लोगों से सुन रक्खी थीं कि वह जन साधारण को बहुत दुःख देता है। नर्मदा तट पर डेरा डाल देने पर श्री प्रभु जी ने हरिहरानन्द जी को आग लाने की आज्ञा दी। हरिहरानन्द जी अनजाने में आग लेने उसी महात्मा के स्थान पर जा पहुँचे। भाई जी उस महात्मा की धूनी में से आग लेकर जब चलने लगे तब उस महात्मा के शिष्य ने कहा—अरे ब्रह्मचारी! यह तुमने क्या किया? मेरे गुरु की धूनी में से आग ले ली!

अब तुम अपनी खैर मत समझो। मेरे गुरुदेव अभी स्नान करके आते ही होंगे। देखना, वे तुम्हें कैसा घोर दण्ड देकर भेजते हैं? इतनी देर में वह महात्मा सामने से आते हुए दिखाई दिए। उनके एक हाथ में जल का लोटा था। भाई जी के हाथ में अग्नि देखते ही वह क्रोध में भर कर उनकी ओर बढ़े। भाई जी ने उन्हें क्रोधित देख कर उस महात्मा के हाथ में से जल का लोटा छीन लिया और उनके साथ ही साथ उसकी शाप देने की शक्ति भी छीन ली और तत्काल भागते हुए श्री प्रभु जी के चरणारविन्दों में पहुँच कर वह महात्मा बहुत गिड़गिड़ाये बोले आपके इस ब्रह्मचारी ने

मेरी वह सारी शक्ति छीन ली है जिसे मैंने वर्षों की साधना से प्राप्त किया था। वह मेरी जीवन भर की कमाई है। यदि आस-पास के लोगों को इस घटना का पता भी चल गया तो वे सब के सब आकर मुझे मार ही डालेंगे। अतः कृपा कर मेरी शक्ति मुझे लौटा दीजिये ताकि मैं जीवित रह सकूं। महात्मा अभी इस प्रकार से कह ही रहे थे कि आस-पास के बहुत से लोग वहां एकत्रित हो गये और श्री प्रभु जी से कहने लगे महाराज ! इस दुष्ट महात्मा ने लोगों को बड़ी हानियां पहुंचाई हैं। किसी की लड़की को अन्धा कर दिया, किसी की पत्नी को मार दिया, किसी का वंशोच्छेद ही कर दिया। इस प्रकार महान दुःख दिए हैं। अतः कृपा करके इस महात्मा की शक्ति वापिस मत कीजियेगा। आप एक बार इस दुष्ट महात्मा को अपनी कुटी से बाहर कर दीजिये ताकि आज हम इसके ठीक-ठीक दर्शन कर लें। ज्यों ज्यों लोग इस प्रकार की बातें कहते थे त्यों-त्यों वह महात्मा भय के कारण कम्पित होता जाता था और बारम्बार हाथ जोड़ कर श्री प्रभु जी से विनय करता था-करुणा सिन्धो ! यदि आप मुझ अशरण को शरण नहीं देंगे तो यह लोग मुझे मार ही डालेंगे।

श्री प्रभु जी ने दोनों पक्षों की बात सुनी और गांव वालों को इस प्रकार सान्त्वना दी-भाई, होनहार जो कुछ थी वह हो चुकी। अब तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी। साधु को मारना नहीं चाहिए अतः तुम लोग इसे छोड़ दो। उधर उस महात्मा को इस प्रकार समझाया महात्मन् तुम्हारा स्वभाव कठोर है और तुम अपनी शक्ति का अहित चिन्तन में दुरुपयोग करते थे। अतः तुम सिद्धि के पात्र नहीं हो। अब तुम निर्जन वन में चले जाओ और अपने पापों का प्रायश्चित करो। परमार्थ लाभ के लिये तप करो। श्री प्रभु जी के इस प्रकार समझाने पर वह महात्मा श्री प्रभु जी को प्रणाम करके वन में चले गये और गांव वाले भी आश्वस्त होकर श्री प्रभु जी का जय-जयकार करते हुए अपने-अपने घरों को लौट गये। इस प्रकार श्री हरिहरानन्द जी श्री प्रभु जी के चरण कमलों में रहते हुए वनों में विचरण करते रहे।

अवधूतानी कालिका से भेंट

एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभु जी अपने भक्त समुदाय के साथ नासिक कुम्भ-पर्व पर स्नानार्थ गये। श्री प्रभु जी भक्तों में योगी सुन्दर गिरि और भाई हरिहरानन्द जी भी थे। साधु-समाज में योगी श्री सुन्दर गिरि वनखड़िया के नाम से प्रसिद्ध थे। वह योगी तो थे परन्तु उनकी प्रकृति कुछ कठोर थी। उपयुक्त स्थान पर श्री प्रभु ने अपने डेरे डलवा दिये और निवास करने लगे। थोड़े दिनों बाद इनके डेरे के बिल्कुल समीप ही एक अवधूतानी ने भी अपना डेरा डाल दिया। वह अवधूतानी वास्तव में स्वयं महाशक्ति कालिका थी किन्तु वेश बदल कर आई थी। उनके साथ उनकी बहुत सी शिष्यायें भी

थीं। योगी सुन्दर गिरि को अवधूतानी का डेरा वहाँ लगाया जाना पसन्द नहीं आया। अतः उन्होंने अवधूतानी कालिका से कहा तुम अपना डेरा यहाँ से उखाड़ कर परे ले जाओ। किन्तु वह भी परम योगिनी कालिका अतः उसने योगी सुन्दर गिरि की बातों की कोई परवाह नहीं की।

परिणाम यह हुआ कि योगी सुन्दर गिरि बहुत कोधित हो गये और उन्होंने कालिका पर अपनी शक्तियाँ चलानी प्रारम्भ कर दीं। कालिका ने भी शक्ति का उत्तर शक्ति से देकर योगी सुन्दर गिरि को बेहोश कर दिया। योगी सुन्दर गिरि भाई श्री हरिहरानन्द जी के परम मित्र थे। उनके बेहोश हो जाने से भाई हरिहरानन्द जी को बड़ा दुख हुआ और उन्होंने भी कालिका पर अपनी अर्जित शक्तियों का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया कालिका ने भी उत्तर दिया। फलस्वरूप कुछ समय बाद भाई श्री हरिहरानन्द जी भी बेहोश हो गये। भाई जी को बेहोशी आई देख श्री प्रभु जी ने विचार किया - कालिका ने अपने शक्ति—प्रयोग से हमारे बालकों को बेहोश कर अच्छा कार्य नहीं किया। कालिका का अभिमान काफी बढ़ चुका था। इसलिये जिस समय श्री प्रभु जी इस प्रकार विचार कर रहे थे, कालिका ने उन पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभु जी एक दम खड़े होकर शक्ति का जवाब देने का विचार करने लगे। उसी समय नेपाल वाले भगवान् महाप्रभु सदाशिव जो वृद्ध ऋषि के रूप में हिमालय पर विराज मान रहते हैं, बीच में आकर प्रगट हो गये और कहा कालिके! क्या तू यह नहीं देखती कि यह कौन है? देख तो, किन के साथ तू लड़ रही है? कालिका ने उत्तर दिया महाराज! मैं जानती हूँ कि यह सब मेरे भाई हैं। परन्तु पहला आघात इन्हीं के ओर से हुआ था। महाप्रभु सदा शिवने आज्ञा दी—कालिके, अब तू पाताल को चली जा। यह लोग भी अपने-अपने स्थानों को चले जायेंगे। महा प्रभु जी की आज्ञा पाकर कालिका तत्काल वहाँ से चली गई। योगी सुन्दर गिरि और भाई हरिहरानन्द जी को भी तत्काल चैत हो गया। और अब सभी लोग यथा पूर्व अपने-अपने कार्यों में लग गये।

भाई हरिहरानन्द जी आज भी भगवान् सदा शिव के नित्य धाम कैलाश पर्वत के समीप श्यामगिरि पहाड़ी पर विद्यमान हैं। वे तीन महीने में एकबार अपनी समाधि से उठते हैं। यह स्थान अगम्य है वहाँ बर्फीली हवायें चला करती हैं, वहाँ पर हर कोई व्यक्ति नहीं पहुंच सकता है। योग योगेश्वर सद्गुरुदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की करुण—कृपा से वह कृतार्थ हो गये हैं। वह तत्व विजयी पूर्ण सिद्ध हैं। लोक लोकान्तरों में स्थूल रूप से गमन करने की उनमें पूर्ण शक्ति है। वह सब प्रकार से पूर्ण योगी हैं एवं सब समर्थ हैं।

शक्तिपात और उसके परिणाम

श्री महेन्द्र नरायण, कोटपर बरैनी, मिर्जापुर

सहज कृपालु गुरुदेव जी कृपापूर्वक अपने शिष्यों पर शक्तिपात कर देते हैं और शक्तिपात के परिणाम स्वरूप वह तीव्र गति से योग-पथ पर अग्रसर होकर योग की उच्च भूमिकाओं में सहसा प्रवेश कर जाते हैं। हमारे शास्त्रों में ऐसी अनेक कथायें यत्र-तत्र वर्णित हैं जिनको श्रद्धापूर्वक पढ़कर योग जिज्ञासुओं में विश्वास और साहस का उदय होता है किन्तु कभी कभी उनके मन में ऐसी शंका पैदा हो जाती है कि इस कलिकाल में न तो ऐसे पूर्ण सिद्ध गुरुदेव की प्राप्ति हो सकती है और न शक्तिपात से योग-सिद्धि। मनकी इस संशयात्मक स्थिति में वह निराश हो बैठ जाते हैं और सद्गुरु-प्राप्ति का प्रयास ही नहीं करते। ऐसे ही निराश योग-जिज्ञासुओं के हृदय स्थल में आशा की लहर लाने के लिए मैं कुछ आप-बीती तथा कुछ अन्य शिष्यों पर मेरे सद्गुरुदेव योग-योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा कृपामय शक्तिपात के चमत्कारिक परिणामों का वर्णन करने का प्रयास कर रहा हूँ।

गत १९६० ई० के प्रयाग के माघ मेले में मुझे गुरुदेव जी का प्रथम बार दर्शन प्राप्त हुआ। उस समय मैं कुछ कष्टदायी शारीरिक एवं मानसिक रोगों से ग्रसित था जिसके निवारण के लिए मैं आयुर्वेदिक, ऐलोपैथिक, होमियोपैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों से उपचार कराकर निराश हो चुका था। उन्हीं दिनों साम्यवादी साहित्य के अध्ययन के परिणाम स्वरूप मेरी धर्म में आस्था प्रायः समाप्त हो चुकी थी और ईश्वर में विश्वास नहीं रह गया था। केवल तर्क-कुतर्क करके साधुओं और धर्म में आस्था रखने वाले व्यक्तियों को तंग करने में और धार्मिक कृत्यों का उपहास उड़ाने में ही मुझे रुचि थी। माघ मेले के समय मैंने प्रयाग के एक दैनिक में पढ़ा कि श्री योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज योग-साधनों द्वारा सभी साध्य एवं असाध्य रोगों की निःशुल्क चिकित्सा करते हैं। रोग से पीड़ित तो मैं था ही, मेरे मन में प्रेरणा हुई कि मैं भी महाराज जी से मिलूँ। मैंने महाराज जी के समक्ष अपनी भाषा में कष्ट निवारण की प्रार्थना की और महाराज जी ने सहज भाव से कुछ योग-साधन करने का आदेश दिया। मुझे यह विश्वास तो नहीं हुआ कि इन योग-क्रियाओं से मैं पूर्णरूपेण रोग-मुक्त हो जाऊँगा किन्तु साधन प्रारंभ कर दिया। इन साधनों के करने से मुझे तत्काल आशातीत लाभ

हुआ और मेरी सभी व्याधियां महाराज की कृपा से सहसा दूर हो गयीं और मैं मन्त्रमुग्ध सा अवाक् रह गया। परिणाम स्वरूप मेरे मन में स्वतः योग के प्रति झुकाव और महाराज जी के चरणारविन्द में अपूर्व श्रद्धा और विश्वास के अंकुर प्रस्फुटित हो गये। अब मैं भाव-प्रेरित होकर दूर से नमस्कार करने की अपेक्षा महाराज जी के चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करने लगा और उसके उपरान्त मेरी पूर्व धारणायें तीव्र गति से बदलती चली गयीं। जहाँ पहले मेरे धर्म-विरोधी विचारों के कारण मेरे परिवार के लोग धार्मिक कृत्य करने में संकोच करते थे अब सभी लोगों का समय धार्मिक चर्चाओं में ही व्यतीत होता। प्रथम दर्शन के एक वर्ष बाद उन सहज कृपामय गुरुदेव जी ने मुझे सपरिवार योग-दीक्षा प्रदान की। योग-दीक्षा के उपरान्त मेरे परिवार के सभी सदस्यों को भी मन की एकाग्रता के साथ ध्यान-योग की अवर्णनीय स्थिति प्राप्त होती गयी। मेरी तथा मेरे परिवार की अनेक कठिन समस्यायें चमत्कारिक ढंग से हल होती गयीं। उन सहज कृपालु गुरुदेव जी ने मुझ जैसे अनधिकारी को अपने पावन चरणों में आश्रय देकर मुझ पर अनायास शक्तिपात करके मेरा ध्यान योग की उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करा दिया। मैं निरन्तर अपने इष्टदेव के स्वरूप में लय रहने लगा। उन कृपालु गुरुदेव जी की संकल्प शक्ति से ही मैं कई मास का ध्यानानुष्ठान सफलतापूर्वक पूर्ण कर सका। ये सब किस प्रकार मुझ अशक्त से दुर्लभ कार्य सम्पन्न हुये इस पर मैं स्वयं आश्चर्य चकित हूं। गोस्वामी जी ने अपने "राम चरित मानस" में इसका रहस्योद्घाटन किया है कि—

श्री गुरुपद नख मणिगण ज्योति।
सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होति॥

अपने गुरुदेव के शक्ति के परिणाम स्वरूप मेरी ध्यान की स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी और मुझे खुली आँखों दिव्य लीला दर्शन होना प्रारम्भ होगया। आने वाली बड़ी बड़ी विपत्तियों का सूक्ष्म में ही भुगतान कराना प्रारम्भ हो गया। मेरे मन में एक तीव्र भावना बार बार उठने लगी कि मेरी ही भाँति अन्य संतप्त जनों की भी श्री गुरुदेव के चरणारविन्द में श्रद्धा जागृत हो जाय जिससे कि उनको भी लौकिक एवं पारलौकिक अमूल्य लाभ हो। मेरी बुद्धि में यह विचार उठने लगा कि यदि सहज कृपालु गुरुदेव जी के चरणारविन्द में प्रत्येक वर्ष बरेली पधारने की प्रार्थना की जाय तो स्वतः ही यहाँ के लोगों का दुःख निवृत्त हो जायेगा। किन्तु मन में यह संकोच बना रहा कि श्री गुरुदेव जी महाराज योग-प्रचार के कार्यक्रमों में अत्यधिक व्यस्त रहते हैं, अतः बरेली के लिये समय निकालना असम्भव सा लगता है। फिर भी मैंने सहज कृपालु गुरुदेव जी के चरणों में बरेली के लिये एक सप्ताह का योग-प्रचार कार्यक्रम देने के लिये प्रार्थना-

पत्र भेज ही दिया और मैं हर्षातिरेक से विभोर हो गया जब उन अहैतुकी कृपानिधि जी ने तुरन्त मेरी आर्तपुकार सुन ली और प्रत्येक वर्ष एक सप्ताह योग-प्रचार कार्यक्रम की अनुमति प्रदान कर दी। इस क्षेत्र के निवासियों पर आरम्भ से ही उनकी कृपा की अमृत वर्षा आरम्भ हो गयी और बड़ी तीव्रता से योग-प्रचार बढ़ने लगा। योग-साधनों द्वारा लोगों के असाध्य रोग दूर होने लगे। पुष्प-प्रसाद एवं रज प्रसाद पाकर कितने ही वृद्धावस्था में पुत्रवान हुये, कइयों का मृगी-रोग दूर हो गया, कई मरणासन्न व्यक्तियों को जीवनदान हुआ। लोगों में स्वतः योग-जिज्ञासा का उदय हुआ और श्रद्धा-प्रेम के वशीभूत गुरुदेव जी ने उन्हें योग-दीक्षा देकर उन पर शक्तिपात किया जिससे उनके मन में स्वतः एकाग्रता उदय हो गयी कई व्यक्तियों को खुली आँखों दिव्य दर्शन की उच्च भूमिकायें अनायास ही प्राप्त हो गयीं। यद्यपि श्री गुरुदेव जी की कृपा से प्राप्त योगानुभवों को वर्णन करने के लिये मैं सर्वथा असमर्थ हूं तथापि कुछ घटनायें संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ जिससे कि योग-जिज्ञासुओं को दृढ़ विश्वास हो जाय कि हमारे पूर्वजों की योग-विद्या और सद्गुरु देव के शक्तिपात में कितनी सच्चाई और शक्ति है।

'पुष्प प्रासद से रोग-निवृत्ति'

बरैनी ग्राम निवासी पं० हरिप्रसाद उपाध्याय व्याकरणाचार्य की एक मात्र बहन श्रीमती शान्ति देवी का विवाह अमुआ बाजार से सटा दुनाई ग्राम के पं० रमाटा प्रसाद जी दुबे के हुआ है। शान्तिदेवी के बड़े पुत्र मंगलाप्रसाद दुबे, जिनकी आयु फरवरी १९६२ ई० में लगभग १२ वर्ष की थी उन्हें ६ वर्ष की आयु से ही मृगी रोग का दौरा होता था। सन् १९६२ ई० में तो यह रोग पूरी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। दिन भर में १०-१२ बार दौरा आता था। लड़का बहुत अशक्त हो चुका था। माता पिता औषधि उपचार तन्त्र-मन्त्र-गण्डा ताबीज साधु फकीर आदि की सहायता लेकर निराश हो चुके थे। श्री दुबे जी के एक अन्य पुत्र-पारसनाथ जी को भी चौथे छठवें दिन मृगी का दौरा हुआ करता था। पं० पारसशंकर जी उपाध्याय के पुत्र नरेन्द्र कुमार जी श्री गुरुदेव जी द्वारा प्राप्त पुष्प प्रसाद को जल में धोकर पान करने से भीषण रोग से रात भर में ही ठीक हो गये. उस समय शान्ति देवी बरैनी ग्राम में भाई के घर थीं। गुरु चरणों के कृपा चमत्कार को देखकर श्रीमती शान्ति देवी अपने बच्चे की बीमारी से मुक्त कर देने के लिये रो रो कर बार-बार प्रार्थना करने लगी। परम कृपालु श्री गुरुदेव जी ने उन्हें सान्त्वना देते हुये आदेश दिया कि देवि ! अपने बच्चे को लाकर मुझे एक बार दिखा दो। उस दिन शुक्रवार था। दिन ढल चुका था। बरैनी से दुनाई ७ मील की दूरी पर है। अगले दिन शनिवार पड़ता

था। शनिवार व मंगलवार को प्रायः श्री गुरु जी कोई नया कार्य-क्रम प्रारम्भ नहीं करते हैं। और श्री प्रभु जी को प्रातः शनिवार दोपहर को आश्रम जाना अति आवश्यक था। उसी रात्रि एक आदमी दुनाई बच्चे को लाने भेजा गया। लड़के के पिता श्री द्विवेदी जी ने रोगी बच्चे को भेजने से इन्कार करते हुये कहा कि जाड़े की रात है बच्चा अस्वस्थ है, उसे ठीक होने के लिये हम सब ने कोई उपाय बाकी नहीं छोड़ा है इस लिये जाना बेकार है। आदमी वापस आगया। दुनाई के श्री धीपू पहलवान ने पण्डित जी को समझाते हुये कहा कि बहुत बड़े महात्मा आये हुये हैं तुमसे कुछ माँग भी तो नहीं रहे हैं। तुम्हारे ससुराल वालों ने कुछ सोच समझकर ही बुलाया है भेजने में क्या बुराई है? उनके समझाने पर पं० जी रात में यह जानने के लिये बरेली आये कि बातों में कुछ सत्यता भी है या यों ही मिथ्या प्रचार मचा हुआ है। यहाँ आते ही ससुराल की सारी घटना देख कर वे अवाक् रह गये। फिर तुरन्त ही सायकिल से घर भागे। दूसरे दिन प्रातः बच्चे को लाकर श्री गुरुदेव जी के समक्ष उपस्थित कर दिया। भक्त वत्सल गुरुदेव जी ने बच्चे की माँ को पुष्प प्रसाद देकर कहा कि इसी के सेवन करने से बच्चा निरोग हो जावेगा। बच्चा शनैः शनैः निरोग हो गया। पुष्प प्रसाद केवल मंगला प्रसाद ने प्राप्त किया पर निरोग हो गये दोनों भाई मंगला प्रसाद जी व पारस नाथ जी। श्री मंगला प्रसाद जी इस समय लगभग २० वर्ष के हैं और मलकूप विभाग में इस समय कार्य कर रहे हैं।

विनोद और रोग-निवृति

मेरे दूसरे सगे भाई श्री गोविन्द नारायण जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री आशुतोष जी हैं। आशुतोष के दूसरे भाई श्री ज्ञानेश को वर्षों से लगातार तेज सूखी खाँसी आ रही थी जिसकी वजह से ज्ञानेश दिनोंदिन कमजोर व दुबले होते जा रहे थे। साथ ही दोनों कानों से हमेशा पीब बहता रहता था। उक्त रोगों के शमन के निमित्त बहुत उपचार किया गया पर लाभ नहीं हुआ। चिकित्सकों ने दोनों कानों में नासूर होना बताया। इनकी शारीरिक अवस्था से घर में सभी को चिन्ता होने लगी किसी को कोई उपाय ही नहीं सूझता था। अन्त में यह निश्चय हुआ कि आगामी फरवरी १९६७ में योग प्रचारार्थ श्री गुरुदेव भगवान जी जब बरेली में पधारें तो अपने रोगों से छुटकारे के लिये ज्ञानेश स्वतः ही गुरु चरणों में निवेदन करे। पर कठिनाई यह थी कि ज्ञानेश की आयु उस समय १९६७ ई० में ६ वर्ष थी। वे सारी बातें कह नहीं सकते थे। हम सब आपस में वार्ता कर रहे थे, ज्ञानेश ने सुनकर कहा कि माँ गुरु जी से पहले आप कहना प्रारम्भ करें तो फिर मैं सारा हाल कह लूँगा। श्री प्रभु जी के बरेली पधारने के तीन चार दिन पश्चात् मेरे घर की स्त्रियाँ ऊपर गुरुदेव जी के निवास वाले कमरे में बैठी थी सोच रही थी कि

ज्ञानेश के विषय में निवेदन कैसे किया जाय। इतने में अन्तर्यामी श्री गुरुदेव जी ने स्वयं ही बच्चे को बुलाकर गोद में बैठाकर स्वतः उससे पूछना आरम्भ किया कि ज्ञानेश तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है। नाथ की करुण कृपा से लड़के ने प्रश्नों का उत्तर बिना किसी हिचक के देना प्रारम्भ किया जिसे सुनकर स्त्रियों को आश्चर्य होने लगा। उसने अपनी ग्रामीण भाषा में कहा - हे गुरु जी हमें बहुत दिन से जोर-जोर से खांसी आवलइ। (भावार्थ) हे गुरुजी हमें बहुत दिनों से तेजी से खांसी आ रही है। सहज कृपालु बच्चे की कही हुई बातें हँस कर बार-बार दुहराते जाते थे। कान के लिये उसने बतलाया कि 'कानों बहलइ।' प्रभु जी ने हँस कर कहा कि क्या कान भी बहता है तो उसने पुनः कहा कि 'महाराज जी दुनो कनवां बहलइ (अर्थात्) दोनों कान बहता है। फिर कहा बस्सालाइ (अर्थात् बास भी करता है। उसकी बातें सुन कर गुरु जी बार-बार दुहराते हुये देर तक मन्द हास्य करते रहे। कुछ देर तक बच्चे को प्यार करके कृपासागर ने उसे गोद से उतार कर कहा 'अच्छा आओ अब खेलो।' घर आने पर लड़के ने अपनी माँ से कहा कि गुरुजी ने कोई दवा नहीं बतलाई, रज या पुष्प प्रसाद भी नहीं दिया है; कैसे ठीक होऊँगा! उस अबोध बालक को क्या पता था कि सर्व शक्तिमान गुरुदेव जी ने उसके रोग-निवारणार्थ सब उपचार कर दिया। दयासिन्धु की विनोदमयी कृपा ने एक हफ्ते के भीतर दोनों कानों का नासूर, पीब बहना तथा पुरानी जीर्ण खांसी से छुटकारा करा दिया।

'अद्भुत कृपा'

यह घटना जनवरी १९६६ ई० की है। पूर्व निश्चित कार्य-क्रमानुसार श्री सद्गुरु देव जी का बरैनी ग्राम में (मिरजापुर) आगमन हो चुका था। मेरे सबसे छोटे भाई श्री रविनारायण जी उस समय मीरजापुर जिलान्तर्गत चोपन बाजार में सोन नदी के पुल पर टोल टैक्स इन्चार्ज थे। श्री गुरुदेव के चरणों के दर्शनार्थ केवल तीन दिन का अवकाश कार्यालय से स्वीकृत करा कर आये थे। सोचा यह था कि अवकाश अवधि समाप्त होने से पूर्व ही घर से कार्यालय में प्रार्थना पत्र भेज कर आगे के लिये और छुट्टी बढ़वा लूँगा, परन्तु उक्त कार्य की पूर्णता के लिये किसी कारण वश उन्हें चोपन कार्यालय में जाना आवश्यक हो गया। चोपन जाकर घर लौटने में एक तो लम्बी यात्रा दूसरे यातायात की असुविधा, गंगा पार होकर जाना तथा रास्ते की कठिनाईयों को सोचते हुये मन में कुछ घबराहट हुई। श्री गुरुदेव जी से आज्ञा लेकर जाने के लिये प्रस्थान किया। घर से कुछ दूर चलकर ज्यों गंगा जी की रेती में उतरे उन्हें धोती कुर्ता पहने, ऊनी शाल ओढ़े सफेद तले का भाल जूता तथा हाथ में छड़ी लिये हुये गुरुदेव जी आगे-आगे चलते दिखाई पड़े और उनके चरणों में से एक तेज शुभ्रप्रकाश निकल कर रविनारायण पर गिरने लगा। मार्ग

में चलते हुये रविन्द्रनारायण ने श्रीगुरुदेव जी के इस दिव्य स्वरूप को करबद्ध नमस्कार किया। सहसा श्री गुरुदेव जी के मुख से ऐसी आवाज सुनाई पड़ी कि-"चल तुझे छुट्टी दिलाती है।" भटौली घाट पर कभी-कभी नाव की घण्टों प्रतीक्षा करनी पड़ती है। परन्तु इन्हें गंगा तट पर पहुँचते ही यात्रियों से भरी हुयी नाव पार जाने के लिये तैयार मिली। गंगा पार करके मिर्जापुर के बस अड्डे पर पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर पता चला कि चोपन जाने वाली बस घण्टों बाद जावेगी। यह सुनकर वे पेट्रोल पम्प के पास आये और वहां पर चोपन जाने के लिये एक ट्रक तैयार खड़ी मिली। इस ट्रक में बैठकर सांय ५½ बजे चोपन गेट पर पहुँचे ही थे कि रविन्द्रनारायण के कार्यालय का हेडक्लार्क अपने कार्य से निवृत होकर राबर्टसगंज जाने को तैयार खड़ा था। रवि-नारायण की अवकाश सम्बंधी प्रार्थना सुनते ही उन्होंने पन्द्रह मिनट के अन्दर ही नियमित कार्यवाही पूर्ण करके अवकाश वृद्धि करदी। अब तुरन्त घर लौटने की चिन्ता करते हुये ज्योंही सड़क पर बाहर आये कि सहसा श्री गुरुदेव जी का वही मधुर मुस्कान लिये स्वरूप दिखायी पड़ा। रविनारायण को स्पष्ट सुनाई पड़ा कि श्री गुरुदेवजी कह रहे हैं कि"चल तुझे घर तक पहुंचा दूं।" थोड़ा आगे बढ़े तो एक जीप खड़ी दिखाई दी, पूछने पर ड्राइवर ने बताया कि यह जीप बनारस जा रही है। किन्तु शहर में न जाकर गंगा के इसी पार रुक जावेगी। रविन्द्रनारायण इस जीप द्वारा बनारस गंगाजी के पुल के पास पड़ाव पर उतर गये कुछ ही क्षण पश्चात् एक ट्रक आती दिखाई पड़ी। दूर से ही देखने पर ज्ञात हुआ कि यह ८८ न० की ट्रक तो अपने गाँव के ही प्रतिष्ठित रईस बाबू रामचन्द्र सिंह की है।

इसी ट्रक में बैठकर रविन्द्रनारायण रात के ११ बजे घर आ गये। आने पर उन्होंने यात्रा में गुरु कृपा का ये सारा वृतान्त बताया। रविनारायण के घर पहुंचने के पूर्व मैंने अपने गुरुभाई स्वामी प्रसाद जी के साथ श्री गुरुदेव जी की चरण सेवा के लिये गुरुदेव जी के शयन-कक्ष में जाना चाहा परन्तु गुरुजी की सेवा में रहने वाले ब्रह्मचारी आनन्द स्वरूप जी ने हमें रोक लिया कि इस समय श्री गुरुदेव जी शयन कर रहे हैं। आप लोगों के जाने से निद्रा में व्यवधान पड़ेगा। प्रातः उठते ही रवीनारायण गुरुदेव जी के कमरे में गये तो गुरुजी ने मंद हास्य करते हुये कहा कि कल तूने मुझे बहुत दौड़ाया। यह सुनकर हम सभी पश्चाताप में डूब गये कि हमारे श्री गुरुदेव जी अपने बच्चों की रक्षार्थ कितना कष्ट उठाते हैं।

श्री गुरुदेव जी के लेखों का प्रभाव

गत फरवरी सन् १६६८ ई० में सहज-कृपालु श्री गुरुदेव जी का काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय में एक सप्ताह का योग प्रचार कार्य-क्रम निश्चित हो चुका था। विश्वविद्यालय की ओर से विधिवत् निमंत्रण भेजने की विभागीय कार्यवाही शेष थी। वहीं श्री

गुरुदेव जी के निवास, सभास्थल, प्रवचन मंच आदि की व्यवस्था देखने के लिये कछवा के मेरे गुरुभाई विजय सिंह को साथ लेकर रजिस्ट्रार के बंगले पर गये। वहाँ मैंने कौतूहलवश उनसे पूछ लिया कि आपके मन में हमारे गुरुदेव के चरणों में श्रद्धा - प्रेम कैसे जाग्रत हुआ ? इस पर रजिस्ट्रार साहब ने आप बीता वृत्तान्त सुनाया कि—

'श्री गुरुदेव जी के कमलवत् चरणों का स्थूल दर्शन प्रथम मुझको ३१ जनवरी १९-६९ को मुगल सराय स्टेशन पर हुआ जब कि श्री गुरुदेव जी योग प्रचारार्थ कलकत्ते जा रहे थे। तभी मैंने उनसे काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के लिये एक सप्ताह का योग प्रचा-रार्थ कार्य-क्रम निश्चित कर लिया था। इससे पूर्व 'सिद्धयोग' पत्रिका में मन की एकाग्रता पर श्री गुरुदेव जी का विशेष लेख पढ़ा था। उसी के आधार पर मैंने मन की एकाग्रता के लिये दत्त-चित्त होकर साधना करना आरम्भ कर दिया था। गुरुदेव जी की कृपा से मुझे कुछ ही दिनों में दिव्यानुभव होने लगे। उन अनुभवों को पत्रों द्वारा मैं महाराज जी के चरणों में प्रेषित करता रहता था। पहले ध्यान में श्री गुरुदेव जी के तथा बाद में भगवान सदाशिव जी के दर्शन होने लगे।' ध्यान में हुये कैलाश-दर्शन की अनुभूति का वर्णन सुनाकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होंने बताया मुझे ध्यान में कैलाश पर्वत का जैसा विस्तार दीखा, ध्यान से उठ कर मैंने उन अनुभवों को स्मरण करके एक रेखा चित्र सा बना लिया। इसके पश्चात् पुरानी पुस्तकों में कैलाश पर्वत का चित्र खोजना शुरू किया कि दैवयोग से अंग्रेजी शासन काल में वायुयान द्वारा कैलाश की सर्वे की हुयी रिपोर्ट पुरानी किसी पुस्तक में प्राप्त हो गयी। ध्यानानुभव के आधार पर बनाये गये रेखाचित्र तथा पुस्तक में दिये हुये चित्र में काफी समानता थी। हाल ही में घटा एक विचित्र ध्यानानुभव रजिस्ट्रार महोदय ने मुझे बताया। उन्होंने कहा कि उनका एक पुत्र उच्च शिक्षा प्राप्त करने के हेतु सपत्नीक अमरीका गया हुआ है। एक दिन जब मैं ध्यान में सुबह बैठने जा रहा था उसी समय चपरासी ने केबिल ग्राम मुझे दिया, जिसमें अमेरिका गये पुत्र को पुत्री-रत्न की प्राप्ति की सुखद सूचना थी। मेरे मन में उस समय एक विचित्र संकल्प सा उठा कि योगी लोगों में दूर-दर्शन की सामर्थ्य हुआ करती है। क्या मुझे यहीं बैठे ध्यान में उस नवजात कन्या का दर्शन श्री गुरुदेव जी की कृपा से हो सकता है ? ऐसे भाव को मन में लिये हुये ज्योंही ध्यान में बैठा-श्री गुरुदेव जी हँसते हुये दर्शन देने लगे। तदनन्तर अमेरिका से उक्त कमरे का सारा दृश्य-दर्शन होने लगा। उसी कमरे में नवजात कन्या का काफी देर तक दर्शन होता रहा। ध्यान से प्रसन्नता पूर्वक उठकर मैंने केबिल ग्राम द्वारा अपने पुत्र को सन्देश भेजा कि नवजात पुत्री

तथा उसके निवास वाले कमरे का कोई चित्र खिंचवा कर शीघ्र भेजो। भक्तवत्सल श्री गुरुदेव जी की कृपा दृष्टि से ध्यान में मैंने जिस कन्या एवं कमरे का दृश्य देखा था हूबहू वही चित्रों में देखने को मिला, जो बाद में मुझे पत्र द्वारा प्राप्त हुए थे। मैंने पत्र द्वारा पुनः अपने पुत्र से पूछा कि क्या ये अमुक-अमुक वस्तु भी कमरे के इस-इस स्थान पर रक्खी हुई है। पत्रोत्तर में उपरोक्त सभी बातों की पुष्टि करते हुये मेरे पुत्र ने आश्चर्य पूछा कि आपको इन वस्तुओं के होने का पता कैसे चला। रजिस्ट्रार साहब की इन ध्यानानुभूतियों को सुनकर मेरे हृदय में गुरुचरणों के प्रेम की लहर सी दौड़ गयी। सहजकृपालु गुरुदेव सदैव अपने बच्चों पर कृपादृष्टि रखते हैं। उनकी कृपामयी लीलाओं को लेखनीबद्ध करना असंभव सा लगता है। केवल अपनी सन्तुष्टि के लिए कुछ कृपामयी लीलाओं के वर्णन करने का क्षुद्र साहस सा किया है।

×०×

विचार-प्रवाह

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

इन्द्रिय जित होकर वाणी का संयम करले, वाणी का प्रयोग कभी सांसारिक कार्यों में न करे। वाणी का संयम होने से मन का संयम सहज हो जाता है। मौन से बढ़कर संसार में कोई तप नहीं।

× × × × ×

ब्रह्मचर्य का विधिवत् पालन हो जाने पर भी मुक्ति मिल जाती है क्योंकि मन, प्राण और वीर्य्य-इन तीनों का परस्पर में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक का निरोध होने पर तीनों का निरोध हो जाता है। काम की उत्पत्ति मन से ही होती है। इसीलिए इसे मनोज कहा है। मन को मथ देने के कारण ही इसे मन्मथ भी कहते हैं। मन का निरोध हो जाने पर प्राणों का और ब्रह्मचर्य्य का भी निरोध हो जाता है। अथवा प्राणों का ही प्राणायामादि से निरोध होने पर मन और वीर्य का निरोध हो जाता है। केवल वीर्य के ऊर्ध्वगामी हो जाने पर मन और प्राण अपने आप निरुद्ध हो जाते हैं। इसीलिए केवल ब्रह्मचर्य्य व्रत से ही मुक्ति हो जाती है। श्रुति कहती है—

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति

संस्कार और संस्कार-फल

श्री सुरेन्द्रबहादुर एम. ए.

हमारे शास्त्रों ने आत्मा की तीन शक्तियों का वर्णन किया है। वे तीन शक्तियाँ हैं:—ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, तथा क्रिया-शक्ति। .

परास्य शक्ति र्विविधा च माया।
स्वाभाविकी ज्ञान-बल क्रिया च॥
(श्वेताश्वतर उप० ६।८)

अर्थात्, इस आत्मा की पराशक्ति और माया अनेक है। ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति और क्रियाशक्ति यह तीनों स्वभाव - सिद्ध हैं।

पाश्चात्य मनोविज्ञान ने भी मन की तीन शक्तियों को स्वीकार किया है, ज्ञानात्मक भावात्मक और क्रियात्मक। इन तीनों शक्तियों की अभिव्यक्ति मन के तीन कार्यों द्वारा होती है जिन्हें क्रमशः चिन्तन अनुभूति तथा इच्छा कहते हैं। हम किसी वस्तु के बारे में जो सोच- विचार करते हैं उसे चिन्तन कहते है। अनुभूति दो प्रकार की होती है, भावात्मक और संवेगात्मक। सुख-दुःख, शीत-ताप, मान अपमान आदि की अनुभूति भावात्मक अनुभूति है और काम-क्रोध आदि की अनुभूति संवेगात्मक अनुभूति है। किसी वस्तु अथवा अवस्था की प्राप्ति अथवा अप्राप्ति चाहना, इच्छा है। इन तीनों में इच्छा ही हमारे शरीर को क्रियाशील बनाती है।

भारतीय मनोविज्ञान की भाषा में ज्ञान-शक्ति की क्रिया चिंतन है, इच्छा शक्ति की क्रिया वासना है, और क्रिया शक्ति की क्रिया चेष्टना है। इस प्रकार आत्मा की तीनों शक्तियों का प्रकाश चिंतना, वासना और चेष्टना द्वारा होता है।

योगशास्त्र की भाषा में चिन्तना, वासना और चेष्टना-ये तीनों चित्त की ही विचित्र प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं। चित्त की प्रत्येक वृत्ति चित्त पटल पर (अर्थात् अचेतन मन में) एक छाप छोड़ जाती है। यह छाप उस वृत्ति की मुहर के समान होती है। इसी छाप को संस्कार कहते हैं। इन्हीं संस्कारों को पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक (Engram) नाम से पुकारते हैं। आत्मा की उपर्युक्त तीनों शक्तियों की क्रियाओं के अनुरूप ही संस्कारभी तीन प्रकार के होते है, ज्ञानज संस्कार, भावात्मक संस्कार तथा क्रियात्मक संकार। कुल संस्कारों में से संस्कारों कुछ इस जन्म के होते हैं और अधिकतर संस्कार पूर्व-जन्मों के होते हैं। यह सभी संस्कार वृत्तियों से उत्पन्न होते हैं। जीवात्मा अनादि काल से नाना प्रकार को

योनियों में नाना प्रकार के शरीर धारण करता आरहा है। इस प्रकार आत्मा का चित्त से अनादि काल से सम्बन्ध चला आरहा है जिसके परिणाम स्वरूप चित्त पर अनन्त जन्मों के संस्कार एकत्रित हैं। इन्ही पूर्व जन्मों के संस्कारों के द्वारा ही हमारा वर्तमान जीवन निश्चित रूप से प्रभावित है और भावी जीवन भी प्रभावित रहेगा। वृत्तिरूप अनन्त कर्मों के अनन्त संस्कार वासना रूप से हमारे चित्त में विद्यमान रहते हैं। हमारा चित्त अनादिकाल से इन्हीं संस्कारों का पुञ्ज बना हुआ है। वृत्तियों से संस्कार उत्पन्न होते हैं और संस्कार से पुनः वृत्तियां उत्पन्न होती हैं।

प्रत्येक वृत्ति एक कर्म है। प्रत्येक कर्म अथवा क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। इस प्रतिक्रिया को ही कर्मफल कहते हैं। प्रत्येक क्रिया की प्रति क्रिया इस जगत का अटल नियम है। यह नियम भौतिक, आध्यात्मिक सभी संसारों में समानरूप से लागू है। हमारे संस्कार इन्ही प्रतिक्रियाओं के बीज हैं जो उपयुक्त समय आनेपर अंकुरित होकर अपना फल प्रदान करते हैं। साधारण जीवों में तीन कोष माने गये हैं, अन्नमयकोष, प्राणमय कोष और मनोमय कोष। उच्चतर जीवों में तीन और सूक्ष्मतर कोष होते हैं जिन्हें विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष और हिरण्मय कोष कहते हैं। आत्मा की विभिन्न शक्तियां सक्रिय होने पर सम्बन्धित कोषों में स्पन्दन उत्पन्न करती हैं। क्रिया शक्ति का सम्बन्ध अन्नमय कोष से, इच्छा शक्ति का सम्बन्ध प्राणमय कोष से और ज्ञान शक्ति का सम्बन्ध मनोमय कोष से है। अतः चिंतन से मनोमय कोष में, वासना से प्राणमय कोष में और चेष्टना से अन्नमय कोष में स्पन्दन उत्पन्न होता है। जब ये स्पन्दन प्रबल होते हैं तो स्पन्दित कोष के उपादन (वे द्रव्य जिनसे उस कोष का निर्माण हुआ है) आन्दोलित होकर अपने स्थान से च्युत हो जाते हैं और उनका स्थान नये उपादान ग्रहण करते हैं। इस प्रकार कोष का परिवर्तन हो जाता है और उन स्पन्दनो का संस्कार उन कोषों में संस्कार रूप से रह जाता है। इन्ही को कर्मों का स्वगत फल कहते हैं। जिस प्रकार कोई गीत ग्रामोफोन के रिकार्ड पर अंकित रहता है और उसका उपयुक्त उद्बोधन करने पर वह पुनः सुनाई देने लगता है, उसी प्रकार हमारे संस्कार चित्त में प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहते हैं किन्तु उपयुक्त अवसर आने पर पुनः प्रकट हो जाते हैं।

हमारे चित्त की वृत्तियां हमारे चित्त में संस्कारों का प्रतिष्ठापन करके और हमें उनका भावी उपभोक्ता बनाकर ही दम नहीं लेती बल्कि वे दूसरों के लिए भी—प्रभावकारिणी होती हैं। जिस कोष में स्पन्दन उत्पन्न होता है केवल उसी कोष तक वह स्पन्दन सीमित नहीं रहता वरन् उपयुक्त

माध्यम की सहायता से यह स्पन्दन चारों ओर प्रवाहित होकर समजातीय वस्तु में भी प्रति स्पन्दन उत्पन्न करता है। जिस प्रकार रेडियो स्टेशन में गाये जाने वाले गीत ईथर के माध्यम से उसी मीटर वाले अन्य दूरवर्ती रेडियो-यन्त्रों को भी प्रतिध्वनियां कर देता है उसी प्रकार हमारी भावना, वासना और चेष्टना प्रवाहित होकर दूसरों पर भी प्रभाव डालती हैं। इसी को कर्मों का परगत फल कहते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि हमारे सत् अथवा असत् चिन्तन से, हमारी शुभावना अथवा कुभावना से केवल हमारा ही हित अथवा अहित होगा दूसरों का नहीं। किन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। जिस प्रकार शब्द का स्पन्दन एक स्थान से प्रवाहित होकर अन्य स्थानों में प्रतिस्पन्दन उत्पन्न करता है उसी प्रकार चिंतन और वासना का स्पन्दन भी एक के मन से दूसरे के मन में पहुँचता है। इसी को विचार संक्रमण कहते हैं। हम अपने सद्विचारों द्वारा दूसरों का हित कर सकते हैं और असद् विचारों द्वारा दूसरों का अहित कर सकते है। शाप और वरदान के फल का यही रहस्य है। इसी लिये हमारे शास्त्र हमें उपदेश देते हैं कि हमारे विचार इस प्रकार के हों कि—'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'। सभी के प्रति हिंसा द्वेष का भाव छोड़कर मैत्री और करुणा का भाव रखना चाहिये। इन्द्रियों को संयम में रखने के साथ-साथ मन को भी संयम में रखना चाहिये। जो व्यक्ति केवल बाहर से इन्द्रियों को रोक कर मन ही मन कामना किया करता है उसे गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने मिथ्याचारी कहा है।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य
आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा
मिथ्याचारः स उच्यते॥

(गीता, ३।६)

यहां तक तो हमने संस्कारों के अपरोक्ष फल पर विचार किया अब हम उनके परोक्ष फलों पर भी विचार करेंगे संस्कारों के परोक्ष फलों को भाग्य या अदृष्ट कहते हैं।

हमारी प्रत्येक चित्तवृत्ति एक संस्कार उत्पन्न करती है और प्रत्येक संस्कार हमारा दूसरों के साथ रिश्ता या सम्बन्ध निर्धारित करता है। यदि हमारे चित्त में किसी के प्रति घृणा अथवा प्रेम की वृत्ति उत्पन्न हुयी तो उसका एक संस्कार बन गया और उस संस्कार के फलस्वरूप हमारा उस व्यक्ति के साथ नाता जुड़ गया। उस संस्कार का भुगतान हुये बिना छुटकारा मिल नहीं सकता। हमने जिस व्यक्ति से घृणा की उस व्यक्ति के प्रति हम भी घृणा के ऋणी बन गये। जिससे हमने प्रेम किया उसके प्रति हम प्रेम के ऋणी बनगये। जब तक उस व्यक्ति से हम भी घृणा अथवा प्रेम प्राप्त न करलेंगे तब तक हमारे उस घृणा अथवा प्रेम के संस्कार का भुगतान पूरा न होगा। संस्कारों को ही कर्म और

संस्कारों के फलों को ही कर्म कहते हैं। जब तक कर्म फल का भोग पूरा नहीं हो जाता तब तक कर्म नाश नहीं होता चाहे करोड़ों कल्प ही क्यों न बीत जायें। हमारे कर्म जिस प्रकार के होंगे उसी प्रकार के फल हमें भुगतने पड़ेंगे। इसीलिये योग सूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है:—

ते ह्लाद परिताप फलाः
पुण्यापुण्य हेतुत्वात् ॥
(योगसूत्र २।१४)

अर्थात् पुण्य का फल सुख और पाप का फल दुःख है।

'नाभुक्तं क्षीयते कर्म
कल्प कोटि शतैरपि'।

अर्थात चाहे करोड़ों कल्प ही क्यों न बीत जायें, बिना कर्मफल को भोगे कर्मों का नाश नहीं होता।

अवश्यमेव भोक्तव्यं,
कृतं कर्म शुभाशुभम्।
शुभाशुभं च यत्कर्म,
विना भोगान्न तत्क्षयं॥

शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों को अवश्य ही भोगना पड़ता है। उन्हें भोगे बिना कर्म का क्षय नहीं होता। महाभारत में लिखा है:—

यथा धेनु सहस्रेषु
वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म
कर्त्तार मनुगच्छति॥

अर्थात्, जिस प्रकार सहस्त्रों गायों के बीच में रहने पर भी बछड़ा अपनी माँ को ढूंढ लेता है उसी प्रकार पूर्व जन्मों के कर्म अपने कर्त्ता ढूंढ लेते हैं।

अतः अपने परम कल्याण को चाहने वाले साधकों के लिये अपनी चित्त वृत्तियों पर अंकुश रखना नितान्त आवश्यक है, नहीं तो वे साधक को कहीं से कहीं लेजा कर पटक देती हैं और उसका सर्वनाश कर डालती हैं। चित्त वृत्तियाँ ही जीव को संसार-चक्र में अनादि काल से घुमा रही हैं और जब तक इनका प्रवाह जारी रहेगा तब तक जन्म और मरण का चक्र भी चलता रहेगा। अतः इस चक्र से छूटने का यही उपाय है कि चित्त-वृत्तियों का प्रवाह रुक जाय, अर्थात् चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध हो जाय। योग-शास्त्र चित्त की वृत्तियों के निरोध का ही विज्ञान है। महर्षि पतञ्जलि ने योग की परिभाषा ही इस प्रकार दिया:—

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

अर्थात्, चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

अब पाठक भलीभाँति समझ गये होंगे कि चित्त-वृत्तियों से संस्कार बनते हैं, संस्कारों से भवचक्र चलता है। भवचक्र ही समस्त दुःखों का कारण है। अतः समस्त

दुःखों का शमन तभी होगा जब भव-चक्र बन्द होगा, भव-चक्र तभी बन्द होगा जब संस्कारों का नाश होगा, संस्कारों का नाश तभी होगा जब चित्त की वृत्तियों का निरोध होगा और चित्त की वृत्तियों का निरोध तभी होगा जब चित्त की वृत्तियों का निरोध करने वाला विज्ञान अर्थात् योगशास्त्रको व्यवहार में लाया जायगा।

तीन मुक्तक

श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

दुर्जनों के दर्प-दम्भों से, सुजन कब खिन्न होते ? ,
व्यंग्य-वचनों से नहीं, वे क्षुब्ध होकर कभी रोते ।
दूसरों के शूल शब्दों को, सुबुध सुन भूल जाते ,
श्रेष्ठ-जन व्यवहार में , अपना नहीं कुछ धैर्य खोते ॥

(२)

दुःख अपना भूलकर, पर - दुःख सज्जन दूर करते ,
दलित,दीन,दुखार्त्त-जन के, क्लेश काट समूल हरते ।
पथ-शूल पग-पग पर बनें, मृदु-फूल शुभ संयोग से ही ,
साधना-रत सुजन सब में, शान्ति से सद्भाव भरते ॥

(३)

भूलना है श्रेष्ठ वह, 'उपकार कर के भूल जाए' ।
उपकार-कर्त्ता के सदा, उन्मुक्त हो गुण-गीत गाए ।
कालिमा,कलुषित-कलङ्कों की, हटेगी आप ही यदि ,
'शङ्कर सुभाषित-आभरण, सद् भावना, सद्ज्ञान आए ॥

मन की एकाग्रता का रहस्य

श्री रामसुमेर उपाध्याय, कछवा मिर्जापुर

मन की चञ्चलता प्रसिद्ध है। सृष्टि के सारे कार्यों में मन की स्थिरता ही सफलता का कारण होती है। सृष्टि के सारे महान् पुरुषों की अद्भुत शक्तियों में उनके मन की एकाग्रता का रहस्य छिपा हुआ होता है। दूसरे लोगों का मन तो निःसन्देह चञ्चल ही होता है। प्रस्तुत लेख में अपने श्री गुरुदेव के कृपाप्रसाद द्वारा मन क्या है? मन की चञ्चलता की गति कितनी है? और क्यों मन चञ्चल है? मन की चञ्चलता को दूर करने का क्या उपाय है? इत्यादि बातें शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा पाठक महाशयों के समक्ष उपस्थित करने का प्रयास कर रहा हूँ। मन के सारे कार्यों को अच्छी प्रकार जान कर इसका मूल कारण समझ लेना चाहिए। क्योंकि मूल कारण के जान लेने पर ही उस कारण को दूर करने में प्राणी समर्थ हो सकता है अन्यथा नहीं। सर्व प्रथम मन की चञ्चलता की गति किस प्रकार है, बताया जा रहा है। हृदय में अष्टदल कमल आठ वर्णों वाला है। और वे कमल दल आठ दिशाओं में स्थित हैं। जिस समय मन जिस दिशा के कमल दल पर विचरता है उस समय मन के द्वारा वैसा ही कार्य होने लगता है।

जैसा ध्यानबिन्दूपनिषद् में लिखा है

पूर्वदले पीत वर्णे यदा विश्रमते मनः
तदा धैर्ये तथौदार्ये धर्म कीर्तौ मतिर्भवेद् ॥
अग्नि कोण दले रक्ते,
यदा विश्रमते मनः।
तदा निद्रालुतालस्ये,
मंदा बुद्धिश्च जायते ॥
कृष्ण वर्णे दक्ष दले,
यदा विश्रमते मनः।
तदा क्रोधे च द्वेषे च
दुष्टुत्वेऽपि मति भवेत् ॥
नैऋत्ये नील वर्णे च
यदा विश्रमते मनः।
तदा स्त्री पुत्रवित्तादि
मोह जाले भवेन्मति ॥
पश्चिमे कपिले वर्णे,
यदा विश्रमते मनः॥
तदाहासे विनोदे च
आनन्दे च भवेन्मतिः ॥
वायव्ये श्यामवर्णे च
यदा विश्रमते मनः।
तदा तीर्थाटनं कृत्वा

वैराग्यं प्राप्नुयान्नर ॥
उत्तरे पीत वर्णे च
यदा विश्रमते मनः ।
तदा शृङ्गार भोगादि
करणे च भवेन्मतिः ॥
ऐशाने गौर वर्णे च
यदा विश्रमते मनः ।
तदा दया क्षमा शान्ति
ज्ञाना दौ च भवेन्मतिः ॥
सन्धौ सन्धौ मिश्र वर्णे
यदा विश्रमते मनः ।
तदा रोगादि भिर्ग्रस्तो
जायते च सदा ध्रुवम् ॥
मध्य भागे सदा वर्णे
यदा विश्रमते मनः ।
तदा शान्तौ समाधौ च
चैतन्ये च भवेन्मतिः ॥

भावार्थ—यह है कि पूर्व दिशा के पीत वर्ण कमल दल पर जब मन विश्राम करता है तब धैर्य, उदारता, धर्म कीर्ति में बुद्धि हो जाती है (१) अग्नि कोण रक्तवर्ण दल पर जब मन विश्राम करता है, तब निद्रा, आलस्य और मन्द बुद्धि को प्राप्त होता है (२) जब दक्षिण दिशा कृष्ण वर्ण दल पर मन विश्राम करता है, तब क्रोध, द्वेष और दुष्टत्व में भी बुद्धि हो जाती है (३) नैऋत्य कोण नील वर्ण कमल दल पर जब मन विश्राम करता है, तब स्त्री, पुत्र तथा वित्तादि (धनादि) के मोहजाल में बुद्धि हो जाती है (४) पश्चिम में कपिल वर्ण दल पर जब मन विश्राम करता है, उस समय हास्य, विनोद और आनन्द में मति हो जाती है (५) वायव्य में श्याम वर्ण कमलदल पर जब मन विश्राम करता है, तब मनुष्य तीर्थाटन करता है और वैराग्य को प्राप्त होता है (६) उत्तर में पीत वर्ण कमलदल पर जब मन विश्राम करता है, तब शृङ्गार भोगादिक में बुद्धि हो जाती है (७) और ऐशान कोण में गौर वर्ण दल पर जब मन विश्राम करता है, उस समय दया, क्षमा, शान्ति और ज्ञानादि में मति हो जाती है (८) और जब कमलदल के सन्धियों में मिश्रित वर्णों पर मन विश्राम करता है, तब (मनुष्य) रोगादि से ग्रस्त हो जाता है, सदा यह ध्रुव है (९) और जब मध्य भाग वर्ण पर मन विश्राम करता है, तब उस समय शान्ति, समाधि और चैतन्यता में सदा बुद्धि हो जाती है (१० इस प्रकार मन के चलने की गति है। और इसी से कहा भी गया है। कि "नानाविधा मनो भेदा" अर्थात् इस मन के अनेकों प्रकार के भेद हैं। तथा—

चश्रु ति काम संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा-ऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्धीर्ह्री रित्येतत्सर्व-मन एवेति

अर्थात कामों की कल्पना, विचिकित्सा (संशय) श्रद्धा, अश्रद्धा, धीरजता, अधीरजता विवेक, लज्जा, और भय ये सब मन ही के कार्य हैं। और भी कथन है कि (मन क्या है ?)

देवी भा० इन्द्रियाणां च प्रवर्मी-स्वरांशमनुत्तमम्। प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम्॥ अनिरूप्यमदृश्यं चज्ञान भेदो मनः स्मृतम्। लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वक् च रसनमिन्द्रियम्॥ अङ्गिनामङ्ग रूपं च प्रेरकं सर्व कर्मणाम्। रिपुरूपं मित्ररूपं सुखरूपं च दुःखदम्॥

अर्थात्—इन्द्रियों में श्रेष्ठ ईश्वर का अंश अर्थात् ईश्वर परमात्मा का विम्बभूत, इन्द्रिय विकार करने वाला, देहधारियों के स्वाधीन न रहने वाला, निरूपण करने में असमर्थ, देखने में न आने वाला और बुद्धि के भेद वाला मन है। उसको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं, नेत्र कान नासिका त्वचा रसना इन्द्रियों का तथा अंगियों का अवयवरूप और सब कर्मों का प्रेरक है। इन्द्रियों में आसक्त होने से रिपुरूप दुःखदायी होता है। सत्क्रियाओं में आसक्त होने से मित्ररूप सुखदायी है। इस० लिये इसकी समझ खास तौर से सद्गुरुदेव ही से प्राप्त होती है। क्यों मन चञ्चल होता है? रजोगुणी, तमोगुणी अन्न के भोजन से मन में चञ्चलता एवं सब प्रकार का विकार उत्पन्न होता है। और अपने परिश्रम से नेक कमाई द्वारा शुद्ध सात्विक अन्न के भोजन से मन शुद्ध एवं निर्विकार होता है।

यथा देवी भागवते—

आहार शुद्धया नृपते,
चित्त शुद्धिश्च जायते।
शुद्धे चित्ते प्रकाशः,
स्याद्धर्मस्य नृप सत्तम्॥

अर्थात्—हे राजन! आहार शुद्धि से चित्त की शुद्धि होती है। और शुद्ध चित्त से ही प्रकाश होता है यही सनातनी धर्म है। और शास्त्रों में अन्न से ही मन की उत्पत्ति कही गई है।

यथा छान्दोग्योपनिषद् में—

अन्नमशितं त्रेधाविधीयते तस्य यः स्थविष्ठोधातुस्तत् पुरीष भवति योमध्यमस्तन्मा—संयोऽणिष्ठस्तन्मनः।

अर्थात् भोजन किए हुए अन्न का तीन प्रकार विभाग होता है। प्रथम जो उसका स्थूल भाग है वह विष्ठा (मल) होता है दूसरा मध्यम भाग मांस होता है और तीसरा जो सूक्ष्म भाग है वह मन होता है। इसी प्रकार अन्य वचन भी है। यथा पाद्मे—

"अन्नं पुंसाशितं त्रेधा जायते जठराग्निना। मलः स्थविष्ठो भाग स्यान्मध्यमो मांसतां भजेत्॥ मनः कनिष्ठो भागः स्यात्तस्मादन्नमयं मनः॥

इसी से पूर्व काल में ऋषि लोग, तथा वर्त्तमान में भी सिद्ध योगी महापुरुष कन्दमूलादि तथा सात्विक अन्नों का भोजन करते चले आ रहे हैं कि जिससे मन में विकार न उत्पन्न हो इसीलिए अनुष्ठानों में हविष्यान्न भोजन कहा है कि जिससे अनुष्ठान में चित्त स्थिर रहे। आज कल कुछ भाई ऐसा भी

कहते हैं कि हमारा तो ध्यान नहीं लगता कुछ और न तो मन ही स्थिर रहता है। समझने की बात है कि कैसे ध्यान लगे और मन स्थिर हो ? जब कि चटनी, अचार मिर्चा तैलादि के पदार्थ भोजन में न मिलें तो चित्त प्रसन्न ही नहीं होता और यह पदार्थ रोग, काम क्रोध के उत्पन्न करने वाले हैं। भला कहिए ऐसे जिह्वास्वाद वालों का चित्त कैसे स्थिर हो सकता है ? कदापि नहीं। क्योंकि अन्न ही से मन का निर्माण होता है तो जैसा अन्न वैसा मन, जैसा मन वैसी, बुद्धि जैसी बुद्धि वैसा कर्म, जैसा कर्म वैसा फल भोगने का जीव बाध्य होता है। अत: मनुष्यों को अपने कल्याण प्राप्ति के लिए शास्त्र वर्णित सात्विक आहार सेवन करना चाहिए। और शास्त्र-निषेध पदार्थों का आहार सर्वथा त्याग देना चाहिए। ताकि मन की चञ्चलता नष्ट होकर मन शुद्ध हो जाय। शास्त्र में शुद्ध एवं अशुद्ध दो प्रकार का मन कहा गया है। यथा-मैत्रेय्युपनिषद्—

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं
शुद्धं चाशुद्ध मेवच।
अशुद्धं काम संपर्का-
च्छुद्धं काम विवर्जितम्॥

अर्थात् मन दो प्रकार का है एक शुद्ध दूसरा अशुद्ध। जो सकाम अर्थात् काम क्रोध युक्त है वह मन अशुद्ध है इनसे रहित हो वह शुद्ध कहा गया है। और जब यही मन विचार करने से शुद्ध हो जाता है तब आप ही अद्वैत-(आत्मा) की प्राप्ति होती है। यथा—

योग वासिष्ठे—

मनो दृश्यमिदं सर्वं
यत्किञ्चित्सचराचरम्।
मनसो ह्युन्मनी भाव
अद्वैत मेव लभ्यते॥

अर्थात् संसार में चर और अचर यह जो कुछ दिखाई देता है यह सब मनही का दृश्य है अर्थात् वास्तव में कुछ नहीं, और मन के लय हो जाने पर पुन: द्वैत भाव नहीं रहता अर्थात् आत्मा का लाभ होता है। उक्त लेख का अन्तिम विषय-मन की चञ्चलता को दूर करने का क्या उपाय है ? बतलाया जा रहा है। जगदात्मा श्री कृष्ण के मुखारविन्द से योग के विषय को पूर्णतया सुनकर अर्जुन ने कहा—

चञ्चलंहि मन: कृष्ण
प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये
वायोरिव सुदुष्करम्॥
गीता ६।३४॥

प्रश्न सुनकर श्री कृष्ण ने कहा कि—

असंशयं महाबाहो
मनोदुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय
वैराग्येण च गृह्यते॥
६।३५॥

अर्थात्-महबाहो नि: सन्देह मन चञ्चल (और) कठिनता से वश में होने वालाहै परन्तु हे कुन्ती पुत्र अर्जुन अभ्यास अर्थात्

स्थिति के लिए बारम्बार यत्न करने से और किससे वैराग्य से वश में किया जाय। इसका उत्तर पीछे किसी स्थल पर आ जायगा।

इसी प्रकार पातञ्जल योग दर्शन में भी कहा गया है कि—

अभ्यास वैराग्याभ्यांतन्निरोधः।

१।१२॥

अर्थात् उन (चित्त वृत्तियों) का निरोध अभ्यास और वैराग्य से होता है।

अभ्यास क्या है?—

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः॥

१।१३॥

अर्थात् उन दोनों में (चित्त की) स्थिरता के लिए जो प्रयत्न करना है वह अभ्यास है। वैराग्य दो प्रकार का है १ अपर वैराग्य। २ पर वैराग्य। १-अपर वैराग्य

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य।

वशीकार संज्ञा वैराग्यम्॥

अर्थात्-देखे और सुने हुए विषयों में सर्वथा तृष्णा रहित चित्त को जो वशीकार नामक अवस्था है वह अपर वैराग्य है।

तत्परं पुरुष ख्याते-
र्गुण वैतृष्ण्यम्॥

पर वैराग्य

अर्थात् पुरुष के ज्ञान से जो प्रकृति के गुणों में तृष्णा का सर्वथा अभाव हो जाना है वह पर वैराग्य है। भगवान व्यासदेव जी ने अभ्यास और वैराग्य को बड़े सुन्दर तरीके से वर्णन किया है, जो इस प्रकार है। चित्त एक नदी है जिसमें वृत्तियों का प्रवाह बहता है। इसकी दो धाराएं हैं। एक संसार सागर की ओर, दूसरी कल्याण सागर की ओर बहती है। जिसने पूर्व जन्म में सांसारिक विषयों के भोगार्थ कार्य किए हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विषय-मार्ग से बहती हुई संसार सागर में जा मिलती है और जिसने पूर्व जन्म में कैवल्यार्थ काम किये हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विवेक-मार्ग में बहती हुई कल्याण सागर में आ मिलती है। संसारी लोगों को प्रायः पहली धारा तो जन्म से ही खुली होती है, किन्तु दूसरी धारा को शास्त्र, गुरु आचार्य तथा ईश्वर चिन्तन खोलते हैं। पहली धारा को बन्द करने के लिए विषयों के स्रोत पर वैराग्य का बन्ध लगाया जाता है और अभ्यास के बेलचे से दूसरी धारा का मार्ग गहरा खोदकर वृत्तियों के समस्त प्रवाह को विवेक स्रोत में डाल दिया जाता है। तब प्रबल वेग से वह धारा प्रवाह कल्याण रूपी सागर में जाकर लीन हो जाती है। इस कारण अभ्यास तथा वैराग्य दोनों ही इकट्ठे मिलकर चित्त की वृत्तियों के निरोध के साधन हैं। जिस प्रकार पक्षी का आकाश में उड़ना दोनों ही पक्षों के आधीन है, न केवल एक पक्ष के। इसी प्रकार समस्त वृत्तियों का निरोध न केवल अभ्यास से ही

और न केवल वैराग्य से ही हो सकता है, किन्तु उसके लिए अभ्यास और वैराग्य दोनों का ही समुच्चय होना आवश्यक है। तमोगुण की अधिकता से चित्त में लय रूप, निद्रा, आलस्य, निरुत्साह आदि मूढावस्था का दोष उत्पन्न होता है और रजोगुण की अधिकता से चित्त में चञ्चलता रूप विक्षेप दोष उत्पन्न होता है। अभ्यास से तमोगुण की निवृत्ति होती है और वैराग्य से रजोगुण की। योग दर्शन २।२८ में बतलाए हुए योग के आठ अङ्गों में से यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, जो बहिरङ्ग हैं उनकी सिद्धि में अभ्यास अधिक से अधिक सहायक होता है और तीन अन्तरङ्ग धारणा, ध्यान, और समाधि में वैराग्य। एक प्रश्न यह होता है कि राजस तामस वृत्तियों के अनादि प्रबल संस्कार चित्त की एकाग्रता के विरोधी हैं। उनसे प्रतिबद्ध (घिरा हुआ) अभ्यास एकाग्रता रूप स्थिति सम्पादन कराने में कैसे समर्थ होगा? अभ्यास के दृढ़ भूमि होने से बतलाते हैं:—

सतु दीर्घ काल नैरन्तर्य
सत्कारा सेवितो दृढ भूमिः ॥

योगद० १।१४॥

सारांश यह है कि विषय-भोग वासना जन्य व्युत्थान के संस्कार मनुष्य के चित्त में अनादि जन्म जन्मान्तरों से पड़े चले आ रहे हैं उनको थोड़े से ही समय में बीज सहित नष्ट कर देना अत्यन्त कठिन है। वे निरोध के संस्कारों को तनिक सी भी असावधानी होने पर दबा सकते हैं। इस कारण अभ्यास को दृढ़ भूमि बनाने के हेतु धैर्य के साथ दीर्घकाल पर्यन्त लगातार श्रद्धा और उत्साह पूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए। शास्त्रों में इस प्रकार का भी प्रमाण है कि मन की चञ्चलता प्राण वायु के निरोध से ही दूर होती है।

नानाविधैर्विचारैस्तु न,
साध्य जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयः प्रायः,
प्राणस्य जय एव हि ॥

योगबीजे-

अर्थात्—अनेकों प्रकार के विचारों से मन साध्य नहीं होता है इससे प्राण वायु के जीतने से ही मन जीता जाता है। पवनोबध्यते येन मन तेनैव बध्यते।

अर्थात्—जो कोई वायु को रोकता है वही मन को भी रोकता है।

मारुते मध्यसंचारे मनः,
स्थैर्यं प्रजायते।
यो मनः सुस्थिरी भावः,
सैवावस्था मनोन्मनी ॥

और भी—

अर्थात्—प्राण वायु का सुषुम्ना के बीच में चलने पर मन की स्थिरता हो जाती है वह जो मन का भली प्रकार स्थिर हो जाना है उसको ही मनोन्मनी अवस्था कहते हैं।

ऊपर में कहा गया है कि—जो कोई वायु को रोकता है वही मन को भी रोकता है तो मान लीजिए कि मन वायु के रोकने से रुक गया किन्तु वायु कैसे रोका जायगा ? वायु तथा मन दोनों के विनाश का सरल उपाय बतलाया जा रहा है।

तत्रापि साध्यः पवनस्य नाशः,
षडङ्ग योगादि निषेवणेन।
मनो विनाशस्तु गुरोः,
प्रसादान्निमेष मात्रेण सुसाध्य एव॥
योग बीजे—

अर्थात्—षडांग योग अर्थात् आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के अभ्यास से वायु का नाश. साधन करना चाहिये और मन का विनाश तो गुरु के-प्रसाद द्वारा पल भर में साध्य हो सकता है। अतः हम सब गुरु भाइयों को चाहिए कि अपने सद्गुरुदेव श्री की श्रद्धा भक्ति पूर्वक सेवायें करके उनके परम, पवित्र, पावन आशीर्वाद रूपी प्रसाद को प्राप्त करें जिससे अपने कल्याण मार्ग के अन्तिमस्थल तक शीघ्र पहुँच जाय।

कर्त्तव्य, प्रेम और सहिष्णुता

(स्वामी विवेकानन्द)

कर्तव्य- चक्र तभी हल्का और आसानी से चलता है, जब उसके पहियों में प्रेम रूपी चिकनाई लगी होती है, अन्यथा वह एक अविराम घर्षण-मात्र है। यदि ऐसा न हो, तो माता-पिता अपने बच्चों के प्रति, बच्चे अपने माता-पिता के प्रति, पति अपनी पत्नी के प्रति तथा पत्नी अपने पति के प्रति अपना-अपना कर्तव्य कैसे निभा सकें ? क्या इस घर्षण के उदाहरण हमें अपने दैनिक जीवन में सदैव दिखाई नहीं देते ? कर्तव्यपालन की मधुरता प्रेम में ही है, और प्रेम का विकास केवल स्वतन्त्रता में होता है। परन्तु सोचो तो सही, इन्द्रियों का, क्रोध का, ईर्ष्या का तथा मनुष्य के जीवन में प्रतिदिन होनेवाली अन्य सैकड़ों छोटी-छोटी बातों का गुलाम होकर रहना क्या स्वतन्त्रता है ? अपने जीवन के इन सब क्षुद्र संघर्षों में सहिष्णुता धारण करना ही स्वतन्त्रता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है।

योग योगेश्वर सद्गुरुदेव

अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योगयोगेश्वर महिमा

श्री जगदीशशरण बिलगइयाँ 'मधुप' तंत्रशास्त्री दतिया, (म.प्र.)

योगेश्वर अधिराज प्रथम शिव, नव-नव नाद प्रणेता।
गिरा न वर्णन कर सकती है, योग मिलन सुख देता॥
राज और हठयोग भेद दो, केवल इतना जानूं।
जन्म सैंकड़ों की बातों को, बतला दे यह मानूं॥
श्रीसमृद्धि सिद्धियाँ सारी, चरणों की दासी हैं।
चन्द्र इड़ा का साधन करके, बनते अविनाशी हैं॥
न्यास सूर्य स्वर साधन करके, षड्रिपु वर्ग नसाते।
द्रवित दुःखी दीनों पर होकर, जग का कष्ट मिटाते॥
मोहन मदन, मान, मद मत्सर, इनके पास न जाते।
हरिहर रूप ध्यान में लाकर, दीर्घ समाधि लगाते॥
नहीं अप्राप्य इन्हें त्रिभुवन में, इष्ट वस्तु पा जाना।
जीवन और मरण मुट्ठी में, योग शक्ति में माना॥
मधुप योग की आवश्यकता, है प्रचार की भारी।
हाय किन्तु अपनाते इसको, अब कुछ ही नर-नारी॥
राज मुकुट हिमगिरि से ऊँचा, शीतल है ज्यों चन्दन।
जन्म-दिवस पर श्री चरणों का, है शत-शत अभिनन्दन॥

योगी जालन्धर और उनकी योग-शक्ति

श्रीमती सीरता भारद्वाज एम.ए.बी.एड.

सृष्टि के प्रारम्भ से ही इस पृथ्वी पर अनेक योगी होते आये हैं और वे अपनी योग शक्ति के बल पर प्राणियों के दुःख दूर करते रहे हैं। परन्तु प्राणी अपने अज्ञान वश उन्हें पहचान नहीं पाता है। वह अपने कष्टों के निवारणार्थ सारे जीवन भटकता फिरता है ठीक उसी प्रकार जैसे कि मृग कस्तूरी की तलाश में वन-वन भ्रमण करता है।

ऐसे ही थे महात्मा गोपीचन्द। उन्हें ज्ञान ही नहीं था कि उनके समीप ही एक ऐसे महात्मा निवास करते हैं जिन्होंने योग शक्ति के बल पर पृथ्वी के गर्भ में भी अपनी रक्षा की है। सभी पाठक गण उत्सुक हो रहे होंगे नाम जानने के लिए तो लीजिए, वह थे नाथ सम्प्रदाय के हीरा, महात्मा ज्वालन्धर नाथ।

एक बार की बात है कि गोपीचन्द की माता ने उन्हें योगी होने का उपदेश दिया और वह उसे महात्मा जालन्धर नाथ के पास छोड़ आई। योगीराज महात्मा जालन्धर नाथ ने उसे अपना शिष्य बना लिया और उसे यह उपदेश दिया कि—

माता मारे, धी धरे,
गऊ सपुच्छी खाय।
ब्राह्मण मारे, मद पिये,
सोऊ मुक्ति पद पाय॥

बेचारे गोपीचन्द इस उपदेश का अर्थ नहीं समझ सके। वह भ्रम में पड़ गए। वह गए एक पंडित के पास इसका अर्थ समझाने के लिए। पर सच बात यह थी कि यथार्थ अर्थ वह भी नहीं समझ सका। केवल शाब्दिक अर्थ ही बताते हुए उन्होंने कहा—

'जो व्यक्ति माता को मारे, पुत्री को पत्नी बनावे, पुच्छ सहित गाय को खावे, ब्राह्मण को मारे और मद्य पान करे, वही मुक्ति पद प्राप्त करता है। यह अर्थ है इस उपदेश का। यदि आप ऐसा करेंगे तो मुक्ति तो नहीं नरक तो अवश्य प्राप्त होगा। जो व्यक्ति दूसरों को यह शिक्षा देता है उसे तो देश में भी नहीं रहने देना चाहिए। इत्यादि बातों को सुनकर गोपीचन्द को क्रोध आ गया और वह अपने गुरु महात्मा जालन्धर के पास गए और उन्हें कूप में डलवा कर कूप को घोड़ों की लीद से पटवा दिया फिर सन्तोष की सांस लेते हुए अपनी माता के पास पहुँचे। माता ने पूछा गुरुजी को छोड़ कर यहाँ क्यों आए हो? गोपीचन्द बोला—उनको तो कूप में डाल कर

ऊपर लीद भरा ही है। माता ने पूछा—क्यों उन्होंने कहा—उनका उपदेश ठीक नहीं था। वह तो मुक्ति का मार्ग बताने के स्थान पर नरक जाने का मार्ग बतला रहे थे। माता ने पूछा उन्होंने क्या उपदेश दिया था? गोपीचन्द ने उसी उपदेश को दुहराते हुए कहा—

"माता मारे, धी धरे,
गऊ सपूच्छी खाय।
ब्राह्मण मारे, मद पिये,
सोऊ मुक्ति पद पाय॥"

माता ने कहा-यह तो अति श्रेष्ठ उपदेश है। तुमको इसमें कौन सी अश्रेष्ठता लगी। यह सब तुम्हारे अज्ञान का दोष है जो कि इसके यथार्थ अर्थ को बिना समझे ही गुरु को कूप में डाल आए हो। लो मैं बताती हूं इसका अर्थ। एकाग्र मन से सुनो—

'ममता रूपी माता को मारे, ब्रह्म ज्ञानियों की बुद्धि रूपी पुत्री को हृदय में धारण करे, इन्द्रियरूप गाय को इन्द्रिय की निषिद्ध विषयाकार वृत्ति रूप पूंछ के सहित खाय अर्थात् इन्द्रियों को जीते, रजोगुण रूप ब्राह्मण को मारे हरि स्मरण रूप मद्य रस का पान करे वही मुक्ति पद को प्राप्त करता है। हे पुत्र! अब तू ही बता कि ऐसा उपदेश देकर गुरु ने कौन सा अपराध किया था कि जिसकी सजा तूने यह दी कि उन्हें कूप में डलवा दिया।' गोपीचन्द माता के मुख से गुरुजी के उपदेश का सही अर्थ समझ कर बहुत ही लज्जित हुए और और नम्र भाव से कहने लगे-माता! गुरुजी का उपदेश तो अति श्रेष्ठ है। तथापि मैं बहिर्मुख होने से उनके गूढ़ उपदेश को समझ न सका। अब मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ और गुरुजी को निकालने जाता हूं। माता ने कहा—नहीं पुत्र! अब तू उनको निकालने का उद्योग मत करना। तेरे निकालने से अब मुझे शाप का भय है। अब तो जब उनके शिष्य गोरखनाथजी आएंगे तो वही उन्हें निकालेंगे। गोपीचन्द ने कहा—गोरखनाथजी का क्या पता है कब आवें। तब तक गुरुदेव किस प्रकार पृथ्वी में जीवित रह सकेंगे। अभी भी वे उन्हें साधारण पुरुष ही समझ रहे थे। माता ने कहा—उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा। न वे जल में डूबेंगे और न लीद ही उनका स्पर्श कर सकेगी। वे तो मध्याकाश में सुख पूर्वक समाधिस्थ रहेंगे।

संयोग वश उन्हीं दिनों महात्मा गोरखनाथ जी विदर्भ की राजधानी में जा पहुंचे। विदर्भ देश का राजा महात्मा जालन्धर नाथ के शिष्य कनिपा का शिष्य था। राजा ने अपने गुरु की आज्ञा से द्वारों के शिखरों पर नाद लटका रखे थे और यह शर्त थी कि जो साधु नीचे खड़ा मृग सींग रूपी नाद को बजा सके वही नगर में भिक्षा कर सकता है अन्यथा कनिपा के आश्रम में भोजन करे। गोरखनाथ जी का शिष्य भिक्षार्थ आया था। नगर के द्वार पर जैसे ही वह पहुंचा द्वारपाल ने राजाज्ञा सुना दी और अन्दर नहीं जाने दिया।

बेचारा वह अपने गुरुदेव महात्मा गोरक्षनाथ जी के पास पहुँचा और जाकर सारा वृत्तान्त बताया। तब गोरक्षनाथजी गए और नाद बजा कर भिक्षा ले आए। यह समाचार जब राजा तथा कनिपा को मिला तो कनिपा ने जान लिया कि—गोरक्षनाथ ही होगा। कनिपा ने अपने एक शिष्य को भेज कर गोरक्षनाथजी को बुलाया। कनिपा ने कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् बातों ही बातों में कहा—गुरुजी तो गृहस्थ में पड़ हुए हैं और आप सिद्धियाँ दिखाते फिरते हैं। तब गोरक्षनाथ ने कहा—आपके गुरुजी तो कूप में पड़े हैं। कनिपा से यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने कहा मैं तो अभी जाकर उन्हें निकालता हूँ। गोरक्षनाथजी बोले—मैं तुमसे पहिले अपने गुरुजी को गृहस्थ से निकाल लाऊंगा। यह कह कर गोरक्षनाथ उस कूप के समीप पहुँचे जिसमें-जालन्धर नाथ थे और लीद से कहा दिन दूनी और रात चौगुनी होती रहना। यह कह कर महात्मा गोरक्षनाथजी कामरूप देश में गए और अपनी योग शक्ति से गुरुजी को ले आए। उधर कनिपा भी जिस कूप में गुरुजी बन्द थे उसकी लीद निकालने में तत्पर थे किन्तु वह कूप बिल्कुल भी खाली नहीं होता था। बेचारे बड़े परेशान थे कुछ ही दिनों में गोरक्षनाथ जी अपने गुरुजी को लेकर कनिपा के पास आए और आकर कनिपा से पूछा—मैं तो अपने गुरुजी को साथ ले आया हूं और तुमने अपने गुरुदेव को अभी तक नहीं निकाला। कनिपा लज्जित तो थे ही बोले—मैं तो कूप को खोदते-खोदते हैरान हूं परन्तु यह कूप है जो तनिक मात्र भी खाली नहीं होता है। गोरक्षनाथ जी ने कहा अच्छा अब आप इस कूप को शीघ्र ही खाली पायेंगे।

इसी बीच मैनावती भी गोपीचन्द को साथ लेकर आई और बोली—आप योगीराज महात्मा जालन्धर नाथ को इस रीति से निकालें जिससे कि वे अपराधी गोपीचन्द को शाप न दे सकें। तब गोरक्षनाथ आदि योगियों ने कहा—तुम कुछ भी भय मत करो। हम ऐसा ही प्रयत्न करेंगे। गोरक्षनाथ जी तो भविष्य के ज्ञाता थे। उन्होंने आगे होने वाली घटना को अपनी यौगिक शक्ति के बल पर जान लिया। उन्होंने गोपीचन्द के आकार की सब धातु की सात मूर्तियां बनवायीं। ये सब मूर्तियां मनुष्य के समान ही चलती फिरती थीं। मूर्तियों के तैयार हो जाने पर ही गोरक्षनाथ ने कूप की लीद से कहा—टीडी होकर उड़ जा। बस योगीराज की आज्ञा पाते ही लीद अल्प समय में ही उड़ गई।

जब कूप खाली हुआ तब उपस्थित योगियों और गृहस्थों ने जल के ऊपर पद्मासन लगाए हुए महात्मा जालन्धर नाथ के दर्शन किए। वे तो ध्यानस्थ थे। उन्हें क्या खबर कि उनके ऊपर की लीद अब हटादी गई। योगियों ने उनको समाधि से जगाया और अपना अपना परिचय बताते हुए चरण

स्पर्श करने लगे। फिर कनिपा गोपीचन्द की धातु-मूर्ति के साथ योगीराज की स्तुति करने लगे। दो मनुष्यों की छाया देखकर योगिराज जी ने कहा—कनिपा ! यह तेरे साथ दूसरा कौन है ? कनिपा ने कहा—गोपीचन्द। यह सुनकर जालन्धरनाथ जी बोले—भस्म हो जा। बस फिर क्या था वह मूर्ति भस्म हो गई। इसी प्रकार सातों मूर्ति योगीराज जी के सामने गई और सातों को ही उन्होंने भस्म होने को कहा। आठवीं बार जब कनिपा के साथ गोपीचन्द गए तो उन्होंने पुनः वही प्रश्न किया—कनिपा ! यह तेरे साथ कौन है ? उसने कहा गोपीचन्द। जालन्धर ने कहा—अमर हो जा। बस जैसे ही गोपीचन्द को अमर होने का वर मिला योगीराज जी को कूप से बाहर निकाला गया बाहर आकर उन्होंने कनिपा से पूछा—मैंने सात बार गोपीचन्द को भस्म होने के लिए कहा था। वह भस्म कैसे नहीं हुआ ? कनिपा ने सारा वृतान्त सच-सच बताते हुए कहा—महाराज। आपके वचन व्यर्थ नहीं गए और भस्म हुई सातों धातु की मूर्तियां गुरुदेव को दिखा दी। बताया कि यह सब मैंने गोपीचन्द की रक्षार्थ ही किया था। यह सुनकर जालन्धर ने कनिपा को शाप दिया "सात वचन खोये हैं मेरे, सर्प गोहिरे खिलाये तेरे।"

अर्थात् तूने मेरे सात वचन व्यर्थ किए हैं अतः तेरे शिष्य सर्प, गोहिरे आदि को पाल कर अपनी जीविका निर्वाह करेंगे। आज-कल जितने भी सपेरे दिखाई पड़ते हैं वे सब कनिपा के शिष्य हैं। वे सब सर्प आदि पाल कर ही अपनी जीविका चलाते हैं।

योगी की शक्ति अचिन्त्य होती है। महाभूतों से लेकर व्यक्त-अव्यक्त प्रकृति पर्यन्त उसकी गति होती है। वह अपनी इच्छा से खेल-खेल में किसी वस्तु को बिगाड़ सकता है और बना सकता है जिस प्रकार एक स्वर्णकार कुंडल को तोड़कर स्वर्ण बना दे और स्वर्ण से कंकण, अंगूठी आदि नाना प्रकार के आभूषणों में उसे परिवर्तित कर सकता है। उसी प्रकार जिसका अधिकार प्रकृति के अणु परमाणुओं पर हो गया है ऐसा सिद्ध योगी क्या नहीं कर सकता। कुदरत के नियम में दखल देने की सामर्थ्य योगी के अतिरिक्त और किस में हो सकती है। स्वामी रामकृष्ण के जीवन का ऐसा ही संस्मरण है। एक दिन उनके शिष्य गिरीश महाशय ने लाल गुलाब के फूल की ओर इशारा करके परमहंस जी से कहा महाराज ! प्रकृति का नियम है कि इस पेड़ पर वर्षों से लाल ही फूल गुलाब का आ रहा है। इस पर सफेद फूल कदापि नहीं आसकता। रामकृष्ण ने सहज भाव से कहा—यदि उसकी इच्छा हो तो इस पर सफेद फूल भी लग सकता है क्योंकि जिस में कानून बनाने की सामर्थ्य है वह नियम में अपवाद बनाने की भी सामर्थ्य रखता है। गिरीश महाशय की समझ में यह बात नहीं आई। दूसरे दिन प्रातः रामकृष्ण ने उसी पेड़ पर लाल फूल के साथ सफेद फूल दिखाते हुए गिरीश से कहा—देख ! तू नहीं मानता था उसकी इच्छा हुई तो इस पर सफेद फूल भी आ गया। इस घटना से योगी की अचिन्त्य शक्ति के सभी संदेह उस शिष्य के मन दूर हो गए।—सरिता भारद्वाज

हंस की गति-विस्तार

(अन्तिम लेख)

श्री मनोहरलाल शर्मा,

[पं० मनोहरलाल शर्मा द्वारा रचित 'हंसोपनिषत्प्रकाशिका—' हंसोपनिषद् की हिन्दी व्याख्या क्रमशः सिद्धयोग में छपती रही है। पूर्व के लेखों में हंसविद्या के भिन्न-भिन्न नाम, हंसविद्या की महिमा, हंसविद्या के अधिकारी, अजपा गायत्री का संकल्प, हंसगायत्री, हंसमन्त्र की गुरु से प्राप्ति, हंसमंत्र और आत्म दर्शन, कुण्डलिनी शक्ति, हंस का अर्थ, हंसयोग की चार अन्तर्भूमिकायें, हंसयोग की तत्त्वोपलब्धि में आवश्यकता, प्राण और मन का संबंध, हंसमहामन्त्र महावाक्य ही है, हंसयोग का साधना विधान, हंसयोग और नाद इत्यादि विषय छप चुके हैं। अब 'हंस की गति विस्तार' शीर्षक लेख, लोक-कल्याण की दृष्टि से, यहां छाप जा रहा है। आशा है योग प्रेमी पाठकों को विद्वान लेखक के इन लेखों से हंस-विद्या का पूर्ण परिचय प्राप्त हुआ होगा।" —सम्पादक]

हंसोपनिषद् में हंस की गति-विस्तार के संबंध में कहा है—

'हंसस्य गति विस्तारं,
भुक्ति मुक्ति फल प्रदम्।'

हंस का गति विस्तार भोग और मोक्ष देने वाला है। हंसोपनिषद् में हंस का पक्षी रूप से ध्यान बताकर पुनः उसकी आठ प्रकार की वृत्तियाँ, गतियाँ संग्रह से बताई हैं। ध्यान बिन्दूपनिषद् में इसी विषय को अधिक स्पष्ट किया है। हंसोपनिषद् वर्णित हंस का ध्यान बताते हैं।

'हंसात्मानम् ध्यायेत्'—

अब आत्मा का हंस पक्षीरूप से ध्यान बताते हैं। यह स्थूल ध्यान है। स्थूल ध्यान सरल होता है। निर्गुण का ध्यान अति कठिन है। अभ्यास बल से स्थूल ध्यान ही पीछे सूक्ष्म और अन्त में निर्गुण ध्यान में बदल जाता है। निर्गुण ध्यान साधक को पहले नहीं बताया जाता।

'एवं कृत्वा हृदयेऽष्टदले हंसात्मानम् ध्यायेत् अग्निषोमौ पक्षावोंकारः शिरो, बिन्दुस्तुनेत्रं, मुखं रुद्रं, रुद्राणी चरणौ बाहू, कालश्चाग्निश्चोभे पार्श्वे भवतः। पश्यति अनारायणश्च शिष्टोभय पार्श्वे भवतः ॥६॥'

अर्थ—इस प्रकार (अंगन्यासादि) करके हंसात्मा का हृदय स्थित अष्टदल कमल में

ध्यान करे। अग्नि और सोम (चन्द्रमा) हंस की दो पांख है, ओंकार सिर है, बिन्दु नेत्र है, रुद्र मुख है, रुद्राणी चरण और बाहु है, काल और अग्नि दोनों पार्श्व है, ज्ञान और वैराग्य बने हुये दो पार्श्व हैं।६।

एषोऽसौ परमहंसो
भानुकोटि प्रतीकाशो।
येनेदं व्याप्दयाप्तं,
तस्याष्टधा वृत्तिर्भवति ॥

अर्थ-यह हंस ही वह परम हंस है जिसका प्रकाश कोटि सूर्यों के तुल्य है, और जो समस्त विश्व को व्याप्त करके रहता है। हंस की अष्टदल कमल की पंखड़ियों पर आठ प्रकार की गति होती है। हंसोपनिषद् से उद्धृत करते है—

'पूर्वे दले पुण्ये मतिः, आग्नेये निद्रालस्यादयो भवन्ति,याम्ये क्रूरमतिः, नैर्ऋत्ये पापे मनीषा, वारुण्यां क्रीडा, वायव्ये गमनादौ बुद्धिः, सौम्ये रति प्रीतिः, ईशाने द्रव्यादानं, मध्ये वैराग्यं, केसरे जाग्रदवस्था कर्णिकायां स्वप्नं, लिङ्गे सुषुप्तिः, पद्म त्यागे तुरीयम्—

॥७॥

अनाहत चक्र के केन्द्र में कमल के आकार का एक मांस पिंड है, इसके आठ दल है, यानी पंखड़ियां है। इसी में जीव रूप से परमात्मा निवास करते है। मनुष्य की मनोवृत्ति कभी सात्विक, कभी रजोगुणी, कभी मलिन होती रहती है। ऐसा सर्वथा ही अनुभव है। हंस विद्या के आचार्यों ने अनुसंधान के उपरान्त बताया है कि इस का मूल कारण जीव रूपी हंस की गति विशेष विशेष दलों पर जाने से होती है। जीव रूपी हंस अष्टदल कमल के एक दल से दूसरे दल पर जाता है तो चित्त वृत्तियों में अन्तर हो जाता है। तात्पर्य यह है कि वृत्तियों का उदय-अस्त अकारण ही नहीं होता है, अपितु हंस की गति बदलने से होता है। हंस योगी अपने साधना सामर्थ्य से मूढ़ और विक्षिप्त वृत्तियां उत्पन्न करने वाले दलों पर हंस की दृष्टि नहीं पड़ने देते। हंस अष्टदल पद्म में तीन रेखाओं (आवरणों) का चक्कर देकर जीवात्मा रूप, प्रकाशमय, अति-सूक्ष्मरूप से विद्यमान रहता है। उसी हृत्क-मल में सब कुछ प्रतिष्ठित है, वह सब जानता है, सब कर्म करता है वहां सभी चरित्र होता है—मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, सुखी हूं, दुःखी हूं, काणा हूं, लंगड़ा हूं, बहिरा हूं, गूंगा हूं, पतला हूं, स्थूल हूं इस प्रकार जीवात्मा हंस स्वतन्त्रवत् रहता है। जब यह अष्टदल कमल की पूर्व दिशा में स्थित पंखड़ी पर विश्राम करता है तो उसकी मति श्रद्धाभक्ति से प्लावित होकर धर्म, पुण्य में होती है। पूर्व दल का वर्ण श्वेत है। जब हंस आग्नेय यानी पूर्व दक्षिण कोण स्थित दल पर विश्राम करता है तो उसकी मति निद्रालस्य की ओर होती है। आग्नेय दल का वर्ण लाल

होता है। जब हंस दक्षिण में स्थित कमलदल पर विश्राम करता है तो उसकी मति द्वेष कोपादि और रजो धर्मों में होती है। दक्षिण दल का वर्ण काला होता है। जब हंस नैऋत्य कोण (दक्षिण पश्चिम) स्थित दल पर विश्राम करता है, तो उसकी मति पाप कर्मों में, हिंसा में होती है। दक्षिण पश्चिम दल का वर्ण नीला होता है। जब हंस पश्चिम दल पर स्थित होता है तो क्रीड़ा विनोद में उसकी मति होती है। पश्चिम दल का वर्ण स्फटिक पाषाण जैसा स्वच्छ होता है। जब हंस वायव्य यानी पश्चिम-उत्तर कोण स्थित कमल दल पर विश्राम करता है तो देशान्तर गमन, वैराग्य में उसकी मति होती है। पश्चिमोत्तर कोण का वर्ण माणिक्य (धूमिल लाल) जैसा होता है। जब हंस उत्तर दिशा में स्थित दल पर विश्राम करता है, तो सुख श्रृंगार स्त्रीगमनादि में उसकी मति होती है। उत्तर दल का वर्ण पीला होता है। जब हंस ईशान यानी उत्तर-पूर्व दल पर विश्राम करता है तो दान अनुग्रह में उसकी मति होती है। ईशान दल का वर्ण वैदूर्यमणि (किंचित नील पीत वर्ण) जैसा होता है।

जब हंस का विश्राम कमल दलों की संधियों पर होता है तो वात पित्तश्लेष्म आदि महाव्याधियों का प्रकोप होता है। जब हंस कमल के मध्य में विश्राम करता है तो वह सब को जानता है, गायन करता है, नृत्य करता है शास्त्र पढ़ता है, आनन्द करता है यानी उसकी जाग्रदवस्था होती है। जब नेत्र थक जाता है तो श्रम निवारण के लिए हंस रूप जीवात्मा पहली रेखा की प्रदक्षिणा करके मध्य में डूब जाता है। प्रथम रेखा का वर्ण बन्धूक पुष्प (हलका नीला) जैसा होता है। तब उसकी निद्रावस्था होती है। निद्रावस्था के मध्य में स्वप्नावस्था होती है।

स्वप्नावस्था के मध्य में देखी हुई सुनी हुई अनुमान की हुई वस्तुओं की कल्पना करके स्वप्न सृष्टि रचाता है। उस कल्पना से थकान होती है। उस श्रम निवारण के लिये हंसरूप जीवात्मा दूसरी रेखा की प्रदक्षिणा करके मध्य में डूब जाता है। दूसरी रेखा का वर्ण इन्द्रगोप (लालीलिये काला) वर्ण जैसा होता है। तब उसको सुषुप्ति अवस्था प्राप्त होती है। स्वप्नावस्था में केवल अन्तःकरण चतुष्टय रहता है। सुषुप्ति में वह अपने कारण अविद्या में बीजरूप से अवस्थान करता है। सुषुप्ति में केवल परमेश्वर संबंधिनी बुद्धि (संस्कार) रहती है, तब उसको परमेश्वर रूप से प्राप्ति होती, यानी अज्ञानाच्छादित आनन्द की अनुभूति होती है। अज्ञान रहने के कारण बुद्धि को परमात्मा दर्शन की स्मृति नहीं रहती।

तब तीसरी रेखा (आवरण) की प्रदक्षिणा करके मध्य में डूबता है। तीसरी रेखा का पद्मराग (लाल कमल) जैसा वर्ण होता है। तब तुरीय, चौथी अवस्था होती है। तुरीय में वृत्ति केवल परमात्मसंबंधी होती है, तब धीरे-धीरे जब तुरीयातीत अवस्था होती है तब हंस के मध्य में आनन्द रूप हो जाता है,

द्वन्द्वों से अतीत हो जाता है। हंस का नाद में लय हो जाता है। जब तक प्रारब्धवश देह-धारण रहता है तब तक जीवित रहता है। देह पतन के पश्चात् परमात्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार मोक्ष होता है। हंस की गति बताकर हंस का परमात्मा रूप होना ही हंस का विस्तार है, यानी जीवरूप से ब्रह्मरूप होना हंस-गति का विस्तार है, अथवा हंस का परमहंस बनना ही विस्तार है।

जाग्रदवस्था में आत्मा, अज्ञान, मन, इन्द्रिय और विषय इन पांचों का संबंध बना रहता है। स्वप्नावस्था में इन्द्रियों और उनके विषयों का यानी नेत्र से रूप का, कर्ण से शब्द का, नासिकादि से गंधादि का संबंध विच्छेद हो जाता है। सुषुप्ति में मन से भी संबंध छूट जाता है, यानी संकल्प-विकल्प नहीं रहते। तुरीय में अज्ञान से भी संबंध छूट जाता है। इसी को चित जड़ ग्रंथि भेदन कहते हैं। इस अवस्था में अज्ञान नहीं रहता। तुरीयातीत पद तो मन वाणी से अगोचर है। इस अवस्था में पहुंचने वाले साधक के अति-रिक्त इस अवस्था को कोई नहीं जानता। हंस गति के विषय में कुछ और भी बताना है। मनुष्य दिनरात में इक्कीस हजार छः सौ श्वास लेता है। श्वासों से तत्त्व जानने की विधि बताते हैं। मनुष्य के हृदय में अष्टदल कमल वाला मन चक्र है, जिसे हंस चक्र भी कहते हैं। यह मन कमल के प्रत्येक पत्र में ढाई घड़ी (एक घंटा) भ्रमण करता है। चौबीस मिनिट की एक घड़ी होती है। सूर्यो-दय से लेकर अगले दिन के सूर्योदय तक (२४ घंटों में) मन चक्र तीन बार भ्रमण करता है। प्रत्येक पत्र में ९०० (नौ सौ) श्वास चलते हैं। (एक मिनिट में १५ श्वास चलते हैं) श्वासों में तत्त्व भी बदल बदल कर आता है। सूर्योदय से प्रथम सवा घड़ी में ३० श्वास आकाश तत्त्व (२ मिनिट) पीछे ६० श्वास वायु तत्त्व (४ मिनिट)। फिर ९० श्वास अग्नि तत्त्व (६ मिनिट) पीछे १२० श्वास जल तत्त्व (८ मिनिट) फिर १५० श्वास पृथ्वी तत्त्व (१० मिनिट) इसके पश्चात् तत्त्व घूमते हैं, यानी उलटते हैं। अगली सवा घड़ी में १५० श्वास पृथ्वी तत्त्व, १२० श्वास जल तत्त्व ९० श्वास अग्नि तत्त्व, ६० श्वास वायु तत्त्व और ३० श्वास आकाश तत्त्व चलते हैं

छः श्वासों का एक पल होती है, तीस श्वासों की पांच पल होती, यानी पांच पल की दो मिनिट होती है। घड़ी को देख कर तत्त्वों का उदय अस्त जान सकते हो। सूर्योदय से दो मिनिट दिन चढ़े तक आकाश तत्त्व रहता है इससे पीछे अगली चार मिनिट तक यानी छः मिनिट दिन चढ़े तक वायु तत्त्व रहता है। ऐसे हिसाब लगा लेना यानी बारह मिनिट दिन चढ़े तक अग्नि तत्त्व, आगे पुन बीस मिनिट तक जल तत्त्व, आगे तीस मिनिट तक पृथ्वी तत्त्व, आगे चालिस मिनिट तक पृथ्वी तत्त्व, ४८ मिनिट तक जल तत्त्व, ५४ मिनिट तक अग्नि तत्त्व, ५८ मिनिट दिन चढ़े

तक वायु तत्व, और ६० मिनिट दिन चढ़े तक अर्थात् सूर्योदय के एक घंटा दिन चढ़े तक आकाश तत्व होता है। इसी प्रकार चौबीस घंटों का हिसाब जानना।

हंसोपनिषद् में अष्टदल कमल के पत्रों का का स्वभाव भी लिखा है। सूर्योदय से ढाई घड़ी तक सब जीवों का श्वास पूर्व दिशा के पत्र में नित्य चलता है, यानी हंस पूर्व दिशा के पत्र पर भ्रमण करता है। बीस घड़ी यानी आठ घंटों में मन चक्र यानी हंस आठों दलों में भ्रमण कर लेता है। २४ घंटों में तीन बार भ्रमण होता है। हंस जब एक पत्र को त्याग कर दूसरे पत्र पर जाता है तब सन्धि होती है। सन्धिकाल में चक्र के मध्य में ध्यान करने से त्रिकालज्ञता सिद्धि मिलती है।

अब अजपा गायत्री चरम अवसान बताते हैं। हंसोपनिषद् में लिखा है—

'यदा हंसो नादे लीनो भवति तदा तुरीयातीतम् उन्मननम् अजपोपसंहारम् इति अभिधीयते ।'

जब हंस यानी मन प्राण सहित नाद में लीन होता है यानी नाद मन को अपने में लय करके स्वयं भी शक्ति में लय हो जाता है। शक्ति शक्तिमान के साथ अभिन्न हो जाता है। तब तुरीयातीत अवस्था प्राप्त होती है। इसी का नाम उन्मनी अवस्था और अजपा गायत्री का उपसंहार है।

किन्हीं आचार्यों ने जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया इन चार अवस्थाओं को ही अंगीकार किया है और किन्हीं आचार्यों ने तुरीया से आगे तुरीयातीत अवस्था को भी स्वीकार किया है। इसमें कुछ विशेषता नहीं है, क्योंकि तुरीया में कुछ आचार्य तुरीयातीत को भी सम्मिलित कर लेते हैं।

माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा के चार पाद माने हैं

अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्

।२।

यह आत्मा ब्रह्म है, उस इस आत्मा के चार पाद हैं। ऐसे ही गायत्री के भी चार पाद माने हैं। वाल्मीकि रामायण को विद्वान गायत्री की व्याख्या कहते हैं। गायत्री के एक एक अक्षर की एक सहस्र श्लोकों में व्याख्या की है, अतः उसमें २४ सहस्र श्लोक हैं। योग वाशिष्ठ जिसे महारामायण कहते हैं, में चतुष्पाद गायत्री की व्याख्या है अतः उसमें ३२ हजार श्लोक हैं। शास्त्रों ने ह्रीं बीज को भी चतुष्पाद कहा है (ह + र + ई + म) प्रत्येक पाद एक-एक अवस्था का द्योतक है। हठप्रदीपिका में लिखा है—

राजयोगः समाधिश्च,
उन्मनी च मनोन्मनी।
अमरत्वं लयस्तत्त्वं,
शून्याशून्यं परं पदम्॥

॥४।३॥

अमनस्कं तथा द्वैतं,
निरालम्बं निरंजनम्।

जीवन्मुक्तिश्च सहजा,
तुर्या चेत्येक वाचकाः ॥
।४।४।।

राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लय, तत्व शून्याशून्य, परं, अमनस्क अद्वैत, निरालंब, निरंजन जीवन्मुक्ति, सहजावस्था, तुरीया—ये सब नाम एक समाधि के ही वाचक हैं। योग तारावली में भगवत्पाद मनोन्मनी अवस्था के विषय में लिखते हैं—

नेत्रे ययोन्मेष निमेषशून्ये,
वायुर्यया वर्जित रेच पूरः।
मनश्च संकल्प विकल्प शून्य,
मनोन्मनीं तामयि संनिधत्ताम् ॥१७॥

चित्तेन्द्रियाणां चिर निग्रहेण
श्वासप्रचारे शमिते यमीन्द्राः।
निवातदीपा इव निश्चलाङ्गाः
मनोन्मनी मग्नधियो भवन्ति ॥१८॥

सिद्धिं तथाविधमनो विलयां समाधौ
श्रीशैल शृंग कुहरेषु कदोपलप्स्ये।
गात्रं यदा मम लताः परिवेष्टयन्ति
कर्णे यदा विरचयन्ति
खगाश्च नीडान् ॥२८॥

वह मनोन्मनी अवस्था, जिसके प्रभाव से दोनों नेत्र खुलने और बन्द होने के व्यापार से रहित हो जाते हैं, जिसके प्रभाव से श्वास का त्याग और ग्रहण बन्द हो जाता है, मन संकल्प विकल्प रहित हो जाता है, मुझे प्राप्त होगी। मन और इन्द्रियों के चिरकाल तक निरोध से, रेचक पूरक प्राणों के शान्त होने पर, यमी के पालने में शूर वीर, वायु रहित स्थान में दीपशिखा की भाँति निश्चल अंगों वाले योगी जन मनोन्मनी अवस्था में डूब जाते हैं। मैं श्री शैल शृंगकुहर श्री शैल नाम का पर्वत के शिखरवर पर गुफा में (सहस्रदल कमल चक्र में) पहुँच कर समाधि में उस प्रकार की मनोविलय लक्षण वाली सिद्धि यानी मनोन्मनी अवस्था को कब प्राप्त करूँगा। जब कि मेरे निश्चल देह को लताएं लपेट लेंगी और मेरे कान पर पक्षीगण अपने घोंसले बनायेंगे।

इस दृष्टि से मनोन्मनी अवस्था को आप ज्ञान भूमियों में सप्तमी भूमि तुर्यगा भी कह सकते हैं। अन्नपूर्णोपनिषद में लिखा है—

असंवेदनरूपा च षष्ठी
भवति भूमिका ॥५।८५॥
।५।८४।।

तुर्यावस्थोय शान्ता सा
मुक्तिरेव हि केवला।
समता स्वच्छता सौम्या
सप्तमी भूमिका भवेत् ॥५।८५॥

तुर्यातीता तु याऽवस्था
परा निर्वाण रूपिणी।
सप्तमी या परा प्रौढा
विषयो नैव जीवताम् ॥
।५।८६।।

असंवेदनरूपा तु षष्ठी
तुर्यं पदाभिधा ॥५। ८८।
तुर्यातीत पदावस्था
सप्तमी भूमिकोत्तमा ।
मनो वाचो भिरग्राह्या
स्वप्रकाश सदात्मिका ॥५।९९।

ज्ञान की छठी भूमि असंवेदन भूमिका होती है। इसे तुर्या भी कहते हैं। इस में द्वैत की अनुभूति नहीं के बराबर होती है। जब यह तुर्यावस्था शान्त हो जाती है यानी प्रौढ़ होकर सप्तमी भूमिका में परिणित हो जाती है तो वही कैवल्य मुक्ति कहलाती है। सप्तमी भूमिका में समता (गुणों की साम्यावस्था) स्वच्छता (माया मल रहितता) तथा सौम्यता (सब प्राणियों को विश्वास दिलाने वाली हिंसक जीव भी उसके समीप माता की गोद की भांति विश्राम पाते हैं) होती है। सप्तमी भूमि साक्षात् मोक्षरूपा है, देहाभिमानियों का वह विषय ही नहीं है। उत्तम सप्तमी भूमिका तुर्यातीत पदवाच्या अवस्था है। यह स्वयं प्रकाश आत्मस्वरूपा है, और मन वाणी का अविषय है।

ॐकार और हंस मंत्र का सम्बन्ध भी समझ लेना चाहिए ये। दोनों एक ही हैं। हंस मन्त्र का शोधित स्वरूप सोऽहं मन्त्र है। सोऽहं में से 'स' और 'ह' का पूर्वरूप सन्धि के प्रयोग से लोप करने पर ओं अवशेष रहता है। प्रणव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शारदा तिलक के २५ वें पटल से प्रमाण देते हैं—

ज्ञानमुत्पद्यते पूर्वं,
हंसलक्षणमव्ययम् ।
पुंप्रकृत्यात्मकौ प्रोक्तौ,
बिन्दुसर्गौ मनीषिभिः ॥५०॥
ताभ्यां क्रमात्समुद्भूतौ,
बिन्दुसर्गावसानकौ ।
हंसौ यौ पुं प्रकृत्याख्यौ हं,
पुमान् प्रकृतिस्तु सः॥१५॥
अजपा कथिता ताभ्यां,
जीवोऽयमुपतिष्ठति ।
पुरुषं स्वाश्रयं मत्वा,
प्रकृति नित्य मास्थिता ॥२५॥
यदा तद्भावमाप्नोति,
तदा सोहयम भवेत् ।
सकारार्णं हकारार्णं,
लोपयित्वा ततः परम् ॥
सन्धिं कुर्यात् पूर्वरूपस्त्,
दाऽसौ प्रणवो भवेत् ॥

हंस मन्त्र से अव्यय ज्ञान की उत्पत्ति होती है। मुनियों ने बिन्दु ं तथा विसर्ग (ः) को पुरुष और प्रकृति कहा है। उनसे क्रम करके यानी बिन्दु से ह और विसर्ग से सः, यानी हंसः मन्त्र का निकास है। बिन्दु और विसर्ग तात्त्विक है ह और सः काल्पनिक है। अतः ह और सः ये दोनों पुरुष प्रकृत्यात्मक अक्षर है। ह पुरुष है, सः प्रकृति है। हंसः मन्त्र को अजपा गायत्री कहते हैं। जीव इस की नित्य आराधना करता है।

पुरुष को अपना आश्रय मान कर प्रकृति सदा उसके आश्रय में रहती है। प्रकृति जब अपने आप को अपने आश्रय से पुरुष परमात्मा से अभिन्न मानेगी तब उसी भाव को प्राप्त हो जायेगी। उसी का भाव आने पर 'सोऽहं' वह परमात्मा मैं हूँ, इस प्रकार हंसः का विपरीत सोऽहं सिद्ध होगा। 'हंसः' इस मंत्र में अकार का निपात करके, जोड़ कर 'अ + हंसः (अहं सः, वह परमात्मा मैं हूं) यह आत्मा का अभिनय करने वाला मंत्र बन जायगा। प्रकृति और पुरुष के अभेद से 'वह परमात्मा मैं हूं' यानी जीव और परमात्मा का ऐक्यभाव सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार अजपा अभ्यास से जीवब्रह्म के एकत्व के अनुभव के का उदय होगा। 'सोऽहं' मन्त्र में से कल्पित सकार और कल्पित हकार का लोप करके ओम् रह जायगा। पूर्वक रूप नामक संधि का इसमें प्रयोग होता है। यानी सोऽहं का जो पूर्व मौलिक रूप ओम् है वह व्यक्त हो जाता है। प्राण स्थिर होने पर मन नाद में लीन हो जाता है, नाद शक्ति में। शक्ति शक्तिमान से अभिन्न है अतः शक्ति का परमात्मा में एकीभाव होने पर तुरीयातीतपद की प्राप्ति हो जाती है। तुरीयातीत अवस्था प्राप्त होने पर अजपा गायत्री का कार्य क्षेत्र समाप्त हो जाता है, इसी को अजपा का उपसंहार कहते है।

हंसगीत को प्रकाशित करने वाला हंस चक्र नीचे देते है। एक अनुभवी महात्मा के सौजन्य से यह प्राप्त हुआ है, और उन्होंने इसे प्रकाशित करने की अनुमति भी दे दी है।

हंसचक्र
(अनाहत चक्रान्तर्गत
अष्टदल कमल)

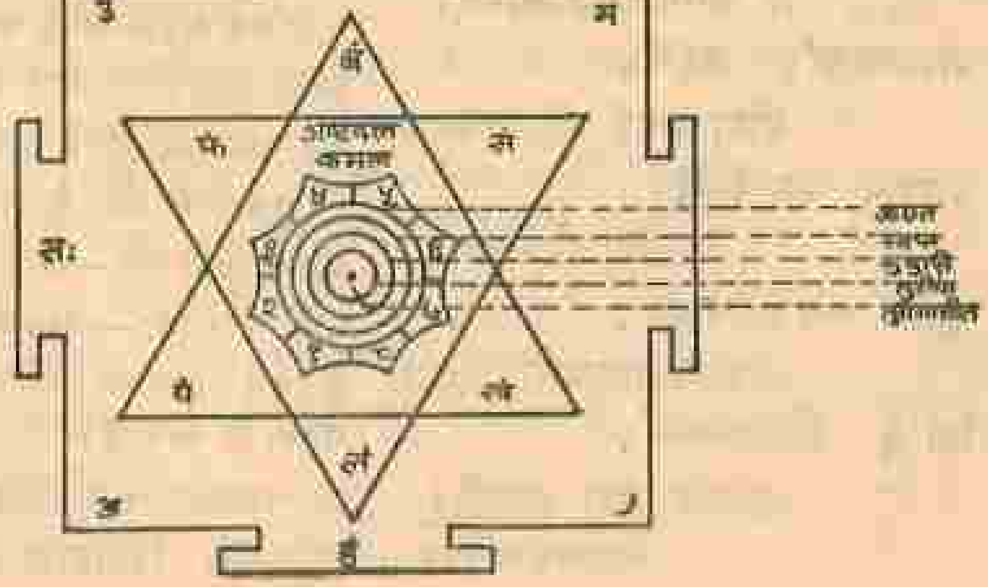

कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल सृष्टि रची। पुनः उसकी शक्ति कुण्डली मार कर आधार शक्ति के रूप में मूलाधार चक्र के नीचे सो गई। स्थूल रचना हंसः है। इससे आगे प्रसार नहीं। प्राण, हंसः मंत्र से ध्वनित होता हुआ, चेतन जड़ की ग्रंथि है। हंसः की गति स्वाभाविक है, अतः यह चेतन है, इसे अपना और पराये का ज्ञान नहीं, अतः यह जड़ है। हंसः में से जड़ तत्व का परिशोधन हंस योग है जड़ तत्व शोधित होने पर साधक देखेगा कि वह अजड़ ही जड़ बना हुआ था। वास्तव में चैतन्य आनन्दघन ही सर्वत्र विराजता था, विराजता है। और विराजता रहेगा, और वह सत्-चित् आनन्दघन मैं 'स्वयं ही हूँ।'

प्राणायाम के प्रकार

(योग वाशिष्ठ से)

सुखपूर्वक रेचक, पूरक और कुम्भक आदि प्राणायामों के दृढ़ अभ्यास से तथा एकान्त ध्यानयोग से प्राणवायु निरुद्ध हो जाता है। ॐकारका उच्चारण और ॐकारके अर्थ का चिन्तन करने से बाह्य विषयों के ज्ञान का अभाव हो जाने पर प्राण वायुका स्पन्दन रुक जाता है। रेचक प्राणायाम का दृढ़ अभ्यास करने से विशाल प्राणवायु के बाह्य आकाश में स्थित हो जाने पर नासिका के छिद्रों को जब प्राणवा युस्पर्श नहीं करता, तब प्राणवायु का स्पन्दन रुक जाता है। इसी का नाम बाह्यकुम्भक प्राणायाम है। पूरक का दृढ़ अभ्यास करते-करते पर्वत पर मेघों की तरह हृदय में प्राणों के स्थित हो जाने पर जब प्राणों का संचार शान्त हो जाता है, तब प्राण-स्पन्दन रुक जाता है। इसी का नाम आभ्यन्तर-कुम्भक प्राणायाम है। कुम्भक की तरह कुम्भक प्राणयाम के अनन्तकालतक स्थिर होने पर और अभ्यास से प्राण का निश्चल स्तम्भन हो जाने पर प्राणवायु के स्पन्दन का निरोध हो जाता है। इसी का नाम स्तम्भवृत्ति प्राणयाम है।●

आश्रम-महिमा

श्री राजपति दुबे 'बालेन्दु' सहायक स्टेशन मास्टर फिरोजाबाद

ग्राम सँवाई सिद्ध-गुफा की महिमा अपरंपार है
अन्तर्यामी-रामलाल प्रभु जी की जय जयकार है

(१)

दूर दूर से सभी भक्तजन, गुरु-दर्शन को आते हैं
प्रवचन-कथा कीर्तन सुन सुन, मन ही मन हर्षाते हैं
साँझ-सवेरे सरस आरती, करती सुख संचार है

(२)

आम-कदम्ब-अशोक आँवला, सुखद समीर बहाते हैं
कोकिल-मोर-चकोर-पपीहा, डाल-डाल पर गाते हैं
गलबहियाँ बबूल से डाले, हँसता हरसिंगार है

(३)

सिंधूरी गुड़हल गुलाब की, कलियाँ खिल-खिल जाती हैं
श्वेत चाँदनी के फूलों की, चादर सी बिछ जाती हैं
लगता परमानन्द हो उठा, कण-कण में साकार है

(४)

नीम तले प्रिय सिद्ध-गुफा को, लख लोचन जुड़ जाते हैं
जहाँ प्रभु जी अमर विराजे, गुरु जी सुधा लुटाते हैं
योग-शक्ति से जीव-मुक्ति का, होता पथ विस्तार है

श्रम से ही जीवन खिलता है, यह आश्रम सिखलाता है
आश्रम-जन आलस में बैठा, नजर न कोई आता है
इसीलिये हर खेत हो रहा, फसलों से गुलजार है

(६)

जब-जब उत्सव के दिन आते, जन मेले लग जाते हैं
एक दूसरे को प्रेमीजन, हँस हँस हृदय लगाते हैं
ऊँच नीच का भेद न मन में, सद्गुरु का दरबार है

(७)

सफल सभी की अभिलाषाएँ, गुरु प्रसाद से होती हैं
जितने आँसू बहे प्रेम में, बन जाते वे मोती हैं
छिन-छिन सुनता टेर सभी की, करुनामय दातार है।

भगवत-प्रेम

सत्य अहिंसा सेवा संयम, सबके साथ साधु-व्यवहार।
सर्वभूतहित में ही निज हित, समझ सदा करता आचार॥
वह पाता न कदापि यातना, पुनर्जन्म में किसी प्रकार।
जाता उच्च देवलोकों में, पाता दुर्लभ भोग अपार॥
पर जो इन शुभकर्मों द्वारा, सदा पूजता श्री भगवान्।
इह-परलोक-विषयों से मनमें, रख विरक्ति मतिमान॥
भगवत्प्रेम, भगवत्सेवा ही होते, जिसके लक्ष्य महान्।
भगवःप्रेम प्राप्त करता वह, उज्ज्वल मिटाता तम-अज्ञान॥

—×०×—

कुण्डलिनी योग

श्री प्रेमवती एम०ए० (दर्शन, हिन्दी)

आधुनिक युग में यह प्रवृत्ति है कि यदि कोई बात वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समर्थित न हो सकती हो तो वह हंस के उड़ा दी जाती है। कुछ भी हो यह तो मानना ही पड़ेगा कि बौद्धिक स्तर पर कोई बात समझने के लिए भौतिक विज्ञान अत्यन्त सहायक है। ऐसी दशा में स्थूल वस्तुओं के वर्णन में तो विज्ञान का समर्थन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

कुण्डलिनी योग के विषय में भी यह दृष्टिकोण है। सर्व साधारण जनता तो कुण्डलिनी योग की साधना में लगती ही नहीं जो विद्वान या आस्थावान व्यक्ति इस मार्ग का अनुसरण करते हैं उन्हें यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी कुण्डलिनी योग का पता लग जाता है तो उनका उत्साह दुगुना हो जाता है। जन साधारण को भी बोधगम्य हो जाने से आस्था हो जाती है।

षट्चक्रों का वर्णन जब किया जाता है तो अनेक नाड़ियों का विस्तार उनके गुण, स्थूल प्राणों से उनकी सूक्ष्मता का सम्बन्ध और उनकी सूक्ष्म शक्तियों का महिमामय ऐश्वर्य भी वर्णन किया जाता है। पर जब शरीर विज्ञान विशारद चीर-फाड़ कर शरीर को देखते हैं तो कहीं भी कुछ उस प्रकार का दृष्टिगोचर नहीं होता। शरीर की रचना बहुत छोटे-छोटे जीवित परमाणुओं से बनी है। प्रत्येक परमाणु गोल होता है और जीवित होता है। आधुनिक विज्ञान वेत्ताओं ने पता लगा लिया है कि मूर्धा स्थित एक परमाणु अन्य कोषों की तरह गोल न होकर आरी के दाँतों की तरह कोण कलेवरों से आवेष्ठित है। चेतना का केन्द्र-बिन्दु इसी ध्रुव कण में प्रतिष्ठित है। चेतन और अचेतन मस्तिष्कों के अगणित घटकों को जो इन्द्रिय जन्य एवं अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है उसका आधार कोष, कुण्डलिनी योग के अनुसार, वही ध्रुव बिन्दु अथवा सहस्रार कमल है। ध्यान से लेकर समाधि तक और आत्म चिन्तन से लेकर भक्ति योग की सारी आध्यात्मिक साधनाओं एवं मनोबल, आत्मबल एवं संकल्प जन्य सिद्धियों का केन्द्रबिन्दु इसी स्थान पर है। इसी स्थान को पिण्ड का ध्रुव स्थान भी कह सकते हैं। यही ब्रह्मरन्ध्र है और षट्चक्रों के क्रम में यही कोष सहस्रार कमल भी है।

दूसरा परमाणु रीढ़ की हड्डी के नीचे है जो गोल न होकर त्रिकोण है। यह चपटा और बीच में उठा हुआ है। इसी को कूर्म, सुमेरु आदि नाम से वर्णन किया गया है और यही षट्चक्रों के क्रम में मूलाधार चक्र

है। शरीर के समस्त जीवन कण गौण हैं। अब केवल दो ही ऐसे हैं जिनकी आकृति में अन्तर है। एक ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्रार कमल दूसरा मल विसर्जन स्थानों के मध्य मूलाधार चक्र। उपर्युक्त दोनों ध्रुवों पर ही जीव की सारी आधार शिला रखी है। इन्हीं की शक्ति से और प्रवृत्ति से हमारा बाह्य और अन्तरङ्ग जीवन-क्रम चलते रहने में समर्थ होता है।

मूलाधार में भरी प्रचण्ड क्षमता को कार्य शक्ति में लगा दिया जाय तो मनुष्य क्या नहीं कर सकता? क्रिया शक्ति इसी चक्र में है जो ऊर्ध्वमुखी होकर जीवन क्रम को स्थिर रखती है। इस प्रचण्ड क्रिया शक्ति को ही कुण्डलिनी कहा जाता है। यह महासर्पिणी इसी स्थान पर मूलप्रायः पड़ी है और अपनी स्थिरता में भी जीवन क्रम को अबाध चला रही है। मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी शक्ति प्रसुप्त स्थिति में भी इतनी तीव्र है कि उसकी अखण्ड धाराएं खुली प्रवाहित नहीं रहने दी जा सकतीं। यह हमारी सक्रियता का केन्द्र स्थल है। इस स्थान से जो अजस्र शक्ति प्रवाहित हो रही है वह दर्शन मात्र से दूसरे व्यक्ति पर प्रतिक्रिया कर सकती है। प्रजनन अंगों को ढकने की परिपाटी में यही शक्ति रक्षा का भाव निहित है। इस क्रिया शक्ति के केन्द्र बिन्दु मूलाधार का रहस्य बहुत कम लोगों को मालूम है। उसी संस्थान का बहिर्मुखी चमत्कार है कि मनुष्य अपने समान एक नये मनुष्य का निर्माण कर देता है जब कि भगवान भी अपने जैसा दूसरा भगवान नहीं बना पाया।

जिस प्रकार से सहस्रार कमल विचार शक्ति का केन्द्र है उसी प्रकार से मूलाधार चक्र क्रिया शक्ति का केन्द्र है। कुण्डलिनी की संचित परिपुष्ट एवं परिष्कृत शक्ति ही भौतिक प्रयोजनों को पूरा कर सकती है। कुण्डलिनी की बहिर्मुखी शक्ति को भी यदि सुव्यवस्थित कर लिया जाय तो भी उसके प्रतिफल आश्चर्यजनक होते हैं। फिर यदि यह महासर्पिणी अन्तर्मुखी होकर जाग्रत अवस्था में ब्रह्मरन्ध्र स्थित अपने सहस्रमुखी महासर्प के मिलने को क्रियाशील हो जाती है तो फिर कहना ही क्या है? सहस्रार विचार शक्ति का और मूलाधार क्रिया शक्ति का केन्द्र है। ये दोनों शक्तियाँ अद्भुत एवं महान हैं। इनका समन्वय ही मनुष्य की भौतिक एवं आत्मिक स्थिति को समुन्नत बनाने में समर्थ होता है। सहस्रार की विचारात्मक साधनायें प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि स्तर की हैं। उनके अनेक प्रयोग और प्रयोजन हैं। मूलाधार की क्रियात्मक विद्युत शक्ति बाह्य स्तर पर आकर्षण और आभ्यान्तरिक स्तर पर प्रकृति विजय से लेकर ब्रह्मानुभूति तक की है।

पिण्ड को ब्रह्माण्ड का एक लघु चित्र मान सकते हैं। हमारी इस छोटी सी देह में वह सब कुछ विद्यमान है जो इस निखिल विश्व ब्रह्माण्ड में उपस्थित दृश्य और अदृश्य इकाइयों में पाया जाता है। इस पृथ्वी की समस्त विशेषताओं को भी हम अपनी इस छोटी सी देह में विद्यमान देख सकते हैं पृथ्वी की समस्त शक्तियों, विशेषताओं और विभूतियों के केन्द्र उसके सन्तुलन बिन्दु हैं। ये सन्तुलन बिन्दु

उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव है। यदि ध्रुवों की स्थिति में किसी प्रकार का आघात पहुँच जाए तो फिर इस भूमण्डल का स्वरूप बदल कर कुछ और ही तरह का हो जायगा। मान्यता है कि किसी ध्रुव के सन्तुलन केन्द्र बिन्दु पर यदि एक मुष्टिक प्रहार जितना आघात भी पहुँच जाए तो यह पृथ्वी अपनी कक्षा से लाखों करोड़ों मील इधर उधर हट जाएगी और तब दिन रात, ऋतु, वर्षा, सर्दी गर्मी आदि का स्वरूप ही बदल कर किसी दूसरे क्रम में परिणत हो जाएगा। यह छोटा सा घूँसा सारा भू-पिण्ड को किसी अन्य ग्रह नक्षत्र से टकरा कर चूर-चूर हो जाने की स्थिति में डाल सकता है। कारण, दोनों ध्रुव ही तो पृथ्वी का सारा नियन्त्रण करते हैं। उनके शक्ति संस्थान इस भूमण्डल की विभिन्न क्रियाओं को क्षमता प्रदान करते हैं तथा उस क्षमता का नियमन भी करते हैं। ठीक इसी प्रकार मानव देह-पिण्ड के भी दो अति सूक्ष्म शक्ति संस्थान हैं। उत्तरी ध्रुव सहस्त्रार कमल और दक्षिणी ध्रुव मूलाधार चक्र है। मेरुदण्ड स्थित सूक्ष्म नाड़ियों के द्वारा ये दोनों जुड़े हैं। इन नाड़ियों के अन्दर भी अनेक स्थानों में ऐसी सूक्ष्म ग्रन्थियाँ हैं जो शक्ति का स्रोत हैं। इन सूक्ष्म ग्रन्थियों में छः ग्रन्थियाँ प्रमुख हैं जो षट्चक्र के रूप में वर्णित हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध और आज्ञा चक्र नीचे से ऊपर के क्रम में स्थित हैं। ब्रह्म नाड़ी में जाग्रत कुण्डलिनी की ऊर्ध्वगति होने से इन छओं चक्रों की अद्‌भुत शक्ति क्रमशः विकसित होती जाती है। ब्रह्मरन्ध्र में पहुचने के पुरुषार्थ तक कुण्डलिनी योग का साधक इन चक्रों की शक्ति से प्राप्त ऐश्वर्य का स्वामी हो गया होता है।

आधुनिक युग में अपने प्राचीन इतिहास पुराणों की ओर भी या तो अन्ध श्रद्धा से देखा जाता है या फिर इस प्रकार मानो वे कोई गल्प हों। इनके अन्तर्निहित तत्व को तो तत्व दर्शी ही प्राप्त कर सकता है परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनको समझने की चेष्टा विद्वानों का सहज प्रयास रहा है। सूक्ष्म तत्व अनिर्वचनीय होता है किसी भी प्रकार की भाषा में उसे बोधगम्य कराना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है अतएव जन साधारण के लिए अनेक बातें रूपक के माध्यम से प्रस्तुत करना भी ऋषियों को अभीष्ट रहा है। समुद्र मन्थन की कथा का चिन्तन अत्यन्त सूक्ष्म रूप से मानव शरीर में अवस्थित शक्ति के प्रयोग - प्रयोजन का है। असुर अर्थात विषयासक्त चित्त वृत्तियाँ इस शक्ति को अपनी ओर खींचती हैं और देवता अर्थात आत्मोन्मुख चित्त वृत्तियाँ उसे अपनी ओर खींचती हैं। इस खींचतान में सुमेरु रूप मेरु दण्ड स्थित मूलाधार चक्र से सुषुम्ना नाड़ी में उठी ऊर्ध्वगामी प्रतिक्रिया का समुद्र मन्थन का नाम दिया गया है। चित्त वृत्तियों के विरोध स्वरूप जो खींच तान उत्पन्न होती है उससे आहूभूत मूलाधार चक्र के खारी जल में अनेक सिद्धियाँ रूप रत्न जगमगा उठते हैं।

कुण्डलिनी जागरण साधना में विषया

सत् वृत्तियों का नियत समुद्र मन्थन की भूमिका प्रस्तुत करता है। कच्छप या सुमेरु मूलाधार में अवस्थित वह शक्ति बीज है जो गोल न होकर चपटा है और जिसका मध्य भाग ऊपर की ओर उठा हुआ है। इसी के ऊपर कुण्डलिनी प्रसुप्त शक्ति साढ़े तीन लपेटे खाकर पड़ी हुई है। इस जगाने का कार्य मन्थन का प्रकरण उद्दाम वासना के उभार और दमन के रूप में होता है। तन्त्र में वर्णित पाँचों भावों का अध्यात्म रहस्य भी कुछ इसी प्रकार का है। इस मन्थन स्वरूप जो रत्न निकले हैं उसमें विष और अमृत जैसे परस्पर विरोधी परन्तु उपयोगी पदार्थ भी निकले हैं। उत्तरी ध्रुव सहस्रार कमल में विक्षोभ उत्पन्न करने का ढंग—काम क्रोध लोभ मोह जैसी दुष्प्रवृत्तियों का है और दक्षिणी ध्रुव मूलाधार से क्रिया शक्ति का क्षोभ विषय विकारों द्वारा निसृत हो जाता है। इन दोनों का दमन दैविक प्रयास है जो कल्प वृक्ष, अमृत, लक्ष्मी, कामधेनु जैसी शक्तियों से योगी को सम्पन्न कर देता है।

एक दूसरे पौराणिक आख्यान के आधार पर क्षीर सागर में सहस्र पात्र वाले शेष नाग पर भगवान विष्णु परम तत्व है जो सहस्रार अन्य कोषों की तरह गोल न होकर आरी के दांतों की तरह कोण कलेवरों से अधिष्ठित है। इन दांतों को सर्प फन कहा जा सकता है। मस्तिष्क में भरा श्वेत सघन लहरों जैसी बनावट का जो पदार्थ है वही क्षीर सागर कहा जा सकता है। यहां विष्णु के पैर लक्ष्मी दबा रही है अर्थात मूलाधार से निसृत समुद्र मन्थन का सबसे उत्तम रत्न लक्ष्मी रूपिणी महासिद्धि भी इस परमात्म तत्व की सेवा में कृतार्थ हो रही है। कुण्डलिनी शक्ति के सर्पिणी रूप में साढ़े तीन फेरे लेने का रूपक भी कुछ इसी प्रकार का है। इस महाशक्ति की सर्पिणी गति जिस समय जाग्रत हो जाती है उस समय योगी की प्रगति को कोई रोक नहीं सकता। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के साढ़े तीन फेरों को खोल कर ही यह महाशक्ति मूलाधार स्थित महासर्पिणी सहस्रार कमल स्थित अपने महासर्प से मिल कर ब्रह्मानन्द में लीन हो सकती है। संकल्प अथवा प्रत्याहार से इसका पहला आधा फेरा खुलते ही धारणा द्वारा दूसरा फेरा गति मान होने लगता है और साधक के निरन्तर प्रयत्न से चौथा अन्तिम फेरा खुलने पर असम्प्रज्ञात समाधि को भी समाप्त कर देती है। बस यह महा माया भगवत स्वरूप को प्राप्त हो गई—महालक्ष्मी विष्णु के पैर दबाने बैठ गई—महासर्पिणी अपने महासर्प को प्राप्त हो गई—संसारी खेल समाप्त हो गया। बाह्य समस्त आकृतियां स्वप्नवत रह गई। संसार के भ्रम से बुद्धि की मुक्ति हो गई और आत्मा निज स्वरूप में आनन्दित हो उठी। उस समय 'भजनी बेना द्वितीयमिदं कृत्स्नस्य तत्स्वरूपतात्॥' की स्थिति रह गई। शेष सब इस प्रकार उड़ गया जैसे भ्रम का भूत।

और प्रतीत होने लगा :

"तदैक्यं नानात्वैकत्वमुपाधि
योग हानादादित्यवत्"

अर्थात् जीव और ईश्वर में एकता है उपाधि के संयोग से उनमें जो नानात्व की प्रतीति होती थी वह उपाधि के भंग होने पर एकत्व के बोध में परिणत हो गई। ठीक उसी प्रकार जैसे एक ही सूर्य जल से पूरित भिन्न भिन्न पात्रों में पृथक्-पृथक् प्रतिबिम्बित होने पर अनेक सा प्रतीत होता है। जल पात्र न रहने पर वह पुनः एक ही रह जाता है।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥१८।१२॥

'हे अर्जुन, जिसमें विषम भाव नाम को भी नहीं होता जो शत्रुओं और मित्रों को समान समझता है, जो दीपक की तरह हो रहकर कभी यह विचार अपने मन में नहीं लाता कि मैं अपने घर के लोगों के लिए तो प्रकाश करूंगा और बाहर वालों के लिए अंधेरा ही रखूंगा, वह मेरा परम प्रिय भक्त होता है। कोई तो कुल्हाड़ी लेकर वृक्ष को काटने चला आता है और कोई बीज बोकर वृक्ष लगाता है। परन्तु वृक्ष उन दोनों को ही समान रूप से अपनी शीतल छाया देता है। जो खेतिहर खेत में पानी डालकर ईख सींचता है, उसे भी ईख अपनी मिठास ही देती है और जो उसे कोल्हू में डालकर पेरता है, उसे भी वह मिठास ही देती है। यह बात नहीं होती कि वह जल सींचने वाले को तो मिठास दे और पेरने वालों को कड़ुई लगे। वह दोनों के लिए समान रूप से मीठी रहती। इसी प्रकार जो अपने शत्रुओं के साथ और मित्रों के साथ भी एक ही प्रकार के और सम भाव से व्यवहार करता है, जो मान और अपमान दोनों को समान और समझता है जो शीत और उष्णता आदि द्वन्द्वों में उसी प्रकार समान और एक-रूप रहता है, जिस प्रकार आकाश तीनों ऋतुओं में समान और एक-रूप रहता है, जो सहज भाव से प्राप्त होने वाले सुखों और दुःखों के मध्य में उसी प्रकार अचल और विकार-हीन रहता है जो भूत मात्र के साथ उसी प्रकार समान भाव से आचरण करता है जिस प्रकार चन्द्रमा की चन्द्रिका राजा और दरिद्र सबके साथ समान रूप से व्यवहार करके उन्हें प्रिय तथा मधुर लगती है, जिसको त्रिभुवन उसी प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार सारा संसार पानी को चाहता है।

—ज्ञानेश्वरी टीका

योगासन और उनके लाभ

(श्री सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा प्रेषित)

—०××०—

आजकल संसार बहुत से व्यायाम प्रचलित हैं। यह शरीर को सुदृढ़ बनाने के लिये सभी ठीक हैं क्योंकि जब तक मनुष्य व्यायाम नहीं करता तब तक उसकी शक्ति शरीर में व्याप्त नहीं होती और वह ढीला ढाला सा बना रहता है। नैत्यिक व्यायाम के करने से वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। और वीर्य के शरीर में व्यापक हो जाने से शरीर की दुर्बलतायें छोड़ दिया करती हैं। हमारे पूर्वजों ने वीर्य को ब्रह्म की उपमा दी है।

वीर्यं हि तद् ब्रह्म।

अर्थात् वीर्य ही तो ब्रह्म है जिनका कहने का अभिप्राय केवल मात्र इतना ही है कि जिनका इस शरीर पर अधिष्ठान करने वाला वीर्य ही है। अतः जो लोग व्यायाम नहीं करते उनका वीर्य साधारण उत्तेजनात्मक विचारों के अन्दर पैदा होने पर नाभि के नीचे रहने वाले मणि केन्द्र में इकट्ठा होकर स्खलित हो जाया करता है और जो लोग व्यायाम के द्वारा इस शक्ति को अपने शरीर में धारण कर लेते हैं वह दिन प्रति दिन ओज तेज युक्त बनते जाते हैं।

उनके शरीर पर एक विलक्षण प्रकार का तेज व्यापक दिखलाई देता है अतः मनुष्य मात्र के लिये व्यायाम करना परमावश्यक है। अब विचारणीय विषय केवल इतना रह जाता है कि मनुष्य कौन सा व्यायाम करे जिसके करने से ओज-तेज बढ़े और दीर्घ आयुष्य को प्राप्त हो। हमारे पूर्वजों ने जिस प्रकार के व्यायामों की शिक्षा अपने ग्रन्थों में दी है वह सचमुच दुनिया के अन्य व्यायामों की अपेक्षा कुछ विलक्षण ही है। उन व्यायामों में लौकिक लाभ के साथ पारलौकिक लाभ भी छिपा हुआ है। संसार में होने वाले अन्य व्यायाम जैसे दण्ड, बैठक, मुगदर, मल्ल युद्ध आदि आदि सभी के अन्दर श्वास की गतियाँ उग्र बन जाती हैं और शरीर के खास खास अंग और वहाँ का स्नायुमंडल कोमलता की अपेक्षा कर्कश बन जाता है। और वह रस-रक्त का शुद्ध प्रकार से ग्रहण नहीं करता। अतः इस प्रकार के व्यायाम छूट जाने पर घोर हानि कर सकते हैं। और आयु के पिछले भाग में श्रामप्रद रहते हैं। अधिकांश जो लोग मल्ल युद्ध करने वाले हैं उनकी आयु का पिछला भाग प्रायः बहुत दुखी देखने में आता है। पक्षाघात, गठिया आदि-आदि रोग उनको घेर लिया करते हैं। चलने फिरने में असमर्थ हो जाते हैं। भूख रहती नहीं है। यौवन अतिशीघ्र में बह जाता है। सारे शरीर को वायु घेर लेती है। और नाड़ी नाड़ी

के अन्दर दुख बना रहता है। एक प्रकार से उनका जीवन भारमय बन जाता है। इसके अतिरिक्त जो लोग अपने त्रिकाल दर्शी पूर्वजों के अनुभवों को सामने रखकर यौगिकव्यायाम करते रहते हैं। वह लोग अधिकांश मेन पूर्ण स्वस्थ एव दीर्घायु दिखलाई देते हैं। आज भी भारतवर्ष में इस प्रकार के बहुत से साधु विद्यमान हैं जिनकी आयु सैकड़ों वर्ष से अधिक है। बल्कि दो दो सौ वर्ष के हैं। और सब प्रकार से पूर्ण स्वस्थ हैं। उनके नेत्रों की ज्योति बिल्कुल ठीक है, आँख नाक, कान, जिह्वा और दांत अपना कार्य बिल्कुल ठीक कर रहे हैं। उनके सिर के बाल बिल्कुल काले हैं। देखने वाले व्यक्ति अधिक से अधिक यह अनुमान लगा सकते हैं कि उनकी आयु ४० या ५० साल की होगी।

किन्तु जब उनका रिकार्ड मिलाया जाता है तो वे सैकड़ों वर्षों के निकलते हैं। ये हमारे उस उत्तम व्यायाम का फल है जिसको त्रिकालज्ञता के साथ विचार कर हमारे ऋषि मुनियों ने लिखा है। वह यौगिक व्यायाम है। यौगिक व्यायाम आसन, बन्ध और मुद्रायें करने से जहाँ मनुष्य दीर्घायु होता है उसके साथ साथ उसका शरीर शक्तिवान तजवीजा और ओज तेज युक्त रहता है। और उससे भी विशेष लाभ यह होता है कि वह अपनी आन्तरिक निधि के मालिक बन जाते हैं। यौगिक व्यायाम करने से उनका स्नायु मंडल बिल्कुल निर्मल हो जाता है। नाड़ियों में निर्मलता के साथ दिव्य शक्ति भर जाती है। क्यों कि हमारे चित्त की प्रसार भूमि नाड़ियें हैं अतः वह लोग नाड़ियों की निर्मलता से अपने मन को एकाग्र कर लेते हैं। बहिर्मुखी वृत्ति बदल करके अन्तरमुखता आने लगती है और दिव्यानुभव जारी हो जाते हैं। अतः हमने यह विचार किया है इस लेख के बाद शनैः शनैः योग आसनों का व्याख्यान करें। जिससे हर देश वासी अपनी इस अमर विद्या से पूरा पूरा लाभ उठा सकें। योग आसनों में हमारे ऋषि मुनियों ने सर्व प्रथम एवं सिद्धियों का दाता कह कर सिद्धासन का वर्णन किया है। हठयोग प्रदीपिका के रचियता योगेन्द्र आत्मा राम ने सिद्धासन का वर्णन इस प्रकार किया है।

सिद्धासन

योनिस्थान कमंघ्रि मूल घटितं कृत्वा दृढं विन्य सेन्मेढ्रे पादम थैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम् स्थाणुः।

संयमितेन्द्रियोऽचल दृशा पश्येद्भ्रुवोरंतरं ह्येतन्मोक्ष कपाट भेद जनकं सिद्धासनं प्रोच्यते॥

अर्थात गुदा और लिंगेन्द्रिय के मध्य भाग में जो (योनि) स्थान अर्थात सीमनी है उससे बायें पैर की ऐडी को मिलाकर और दाहिने पैर की एड़ी को उसी स्थान में लिंग नाल के ऊपर जमा कर और हृदय के समीप छाती पर ठोडी को लगा कर सब प्रकार से इन्द्रिय द्वारों को रोक कर योगी बिल्कुल निश्चल भाव से अपनी दृष्टि को स्थिर रखकर भ्रुकुटी

के मध्य भाग को देखता रहता है। और मेरु दण्ड को सीधा रख कर बैठता है इसको मोक्ष द्वार को खोलने वाला सिद्धासन कहा गया है।

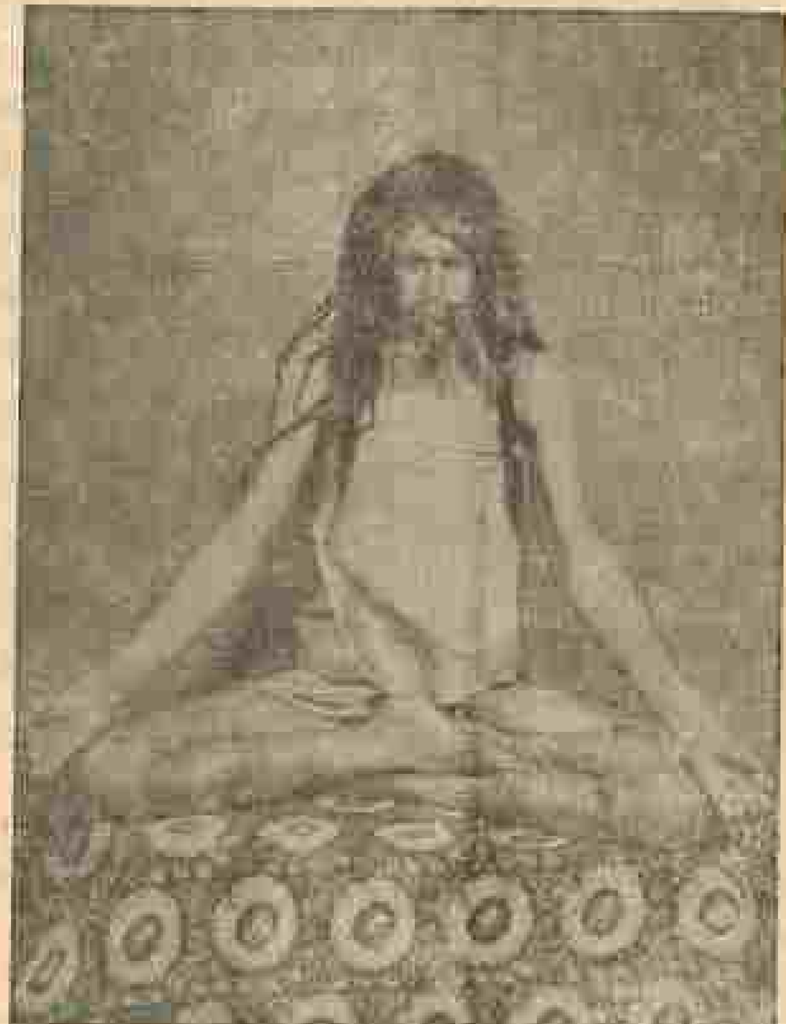

सिद्धासन करने की सरलविधि

मेरु दंड को सीनीधा रखकर बैठ जाओ। अपने बायें पैर की एड़ी को गुदा द्वार के योनि स्थान सीमनी में रखो और अपने दाहिने पैर की एड़ी को लिंगेन्द्रिय के ऊपर रखो और निश्चल भाव से जालन्धर बन्ध लगा कर भ्रूमध्य को देखते रहो। अपने दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर फैलाकर रखो। यह सिद्धासन करने की सरल विधि है।

सिद्धासन से लाभ

इस सिद्धासन के गुण इस प्रकार कहे हैं:-

चतुरशीतिपीठेषु ,
सिद्धमेव सदाभ्यसेत् ।
द्वासप्ततिसहस्राणां ,
नाडीनां मलशोधनम् ॥
आत्मध्यायी मिताहारी,
यावद्द्वादशवत्सरम् ।
सदा सिद्धासना ,
भ्यासा योगी निष्पत्तिमाप्नुयात ॥

अर्थात् चौरासी आसनों में से सिद्धासन को मुख्य माना गया है। यह आसन बहत्तर हजार नाड़ियों के मलों को शुद्ध करता है जो व्यक्ति आत्म ध्यान और मिताहारी होकर सदा सिद्धासन का अभ्यास करता है वह अवश्य सिद्धि को पा जाता है। सिद्धासन सभी आसनों के फलों को देने वाला है। और इसमें बिना किसी परिश्रम के मूल बन्ध, उड्यान बन्ध और जालन्धर बन्ध तीनों बन्ध स्वाभाविक लग जाते हैं। पूर्वाचार्यों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है।

नासनं सिद्ध सदृशं ,
न कुंभः केवलोपमः ।
न खेचरी समा मुद्रा ,
न नादसदृशो लयः ॥

अर्थात् सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं है केवल कुम्भक के समान कुम्भक नहीं है। खेचरी के समान कोई मुद्रा नहीं है। और नाद के समान लयता देने वाला कोई साधन नहीं है। अतः मोक्षाभिलाषी साधकों को परमात्मप्राप्ति के लिये सिद्धासन करना परमावश्यक है। कुछ लोगों का विचार है कि सिद्धासन गृहस्थियों के लिये विशेष उपयोगी नहीं। यह बात सर्व साधारण रूप से तो भ्रम ही है किन्तु इतना अवश्य है कि गृहस्थी तीन-तीन चार-चार घन्टे नित्य सिद्धासन का अभ्यास करते हैं उनके लिये हो सकता है विशेष लाभदायक न हो क्योंकि योनि स्थान के अन्दर लगी हुई एड़ी वीर्य वाहिनी नाड़ी को संकुचित करती है। और इसके साथ-साथ मूल बन्ध लग जाने के कारण अपान का ऊर्ध्वाकर्षण होता है। ऐसी स्थिति में जो गृहस्थी लोग स्वस्तीक आसन का अभ्यास करलें जिसमें उनको कभी भी कोई हानि की सम्भावना हो ही नहीं सकती। स्वस्तीक आसन का स्वरूप बहुत ही सरल है और सभी के लिये पूरा पूरा लाभदायक है।

जानूर्वोरंतरे सम्यक् ,
कृत्वा पादतले उभे ॥
ऋजुकायः समासीनः ,
स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

अर्थात् दोनों जानुओं के बीच दोनों पैरों के तालुओं को दबाकर एवं समकाय शिरोग्रीव होकर आनन्द पूर्वक सीधा बैठो इसी को स्वस्तीक आसन कहते हैं।

इसका फल भी प्रायः सिद्धासन के समान ही है। और सन्यासी व ग्रहाश्रमी सभी के लिये है।

प्रथम साधारण स्थिति में बैठ जाओ और अपने बांये पैर के पञ्जे को पकड़ करके पिंडरी और जंघा के बीच में अपने दोनों पैरों के पञ्जों को दबादे और समकाय शिरोग्रीव होकर के दोनों हाथों को सिद्धासन की तरह ही दबा करके मेरुदण्ड को सीधा करके बैठ जाये और दृढ़तर अभ्यास करे। स्वस्तीक आसन का फल भी सिद्धासन के समान ही है। केवल अन्तर इतना ही है कि इसको हर व्यक्ति सरलता पूर्वक कर सकता है। सिद्धासन और स्वस्तीक आसन दोनों आसन अभ्यास किये हुये मोक्ष द्वार को खोलते हैं।

—××—

पद्मासन

अब सर्व साधारण के हित के लिये पद्मासन का उल्लेख करते हैं—

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम् ॥

अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रं मालोकये देतद्व्याधि विनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते ॥

पद्मासन करने की सरलविधि

अर्थात् अपनी बाईं जंघा पर दहिने पैर के पंजे को और दहिनी जंघा पर बांये पैर के पंजे को दृढ़ता पूर्वक रख कर अपने दहिने हाथ का पीठ पीछे से घुमाकर के दहिने पैर के अंगूठे को और बांये हाथ को पीछे से घुमा कर बांये पैर के अंगूठ को पकड़। ठोड़ी को छाती में लगाए रक्खो और नासिका के अग्रभाग को देख। इसको पद्मासन कहते है। जो अभ्यासी योगियों के लिये सभी प्रकार की व्याधियों को नाश करता है।

साधारण रूप में सरलता से बैठ करके अपने दहिने पैर के पंजे को पकड़ कर बांयीं जंघा पर रख ले और इसी प्रकार से बांये पैर के पंजे को पकड़ कर दहिनी जंघा पर रख ले। अपने दहिने हाथ को पीठ पीछे से घुमाकर दहिने पैर के अंगूठे को और बांये हाथ को पीठ पीछे से घुमा कर बांये पैर के अंगूठे को दृढ़ता से पकड़े। मेरु दण्ड को सीधा रक्खो और अपनी ठोड़ी को छाती में अर्थात् जालन्धर बन्ध लगा कर नासिकाग्र का अवलोकर करे। इसको पद्मासन कहते हैं। यह आसन सब प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला है।

पद्मासन का फल

इदं पद्मासन प्रोक्तं
सर्व व्याधि विनाशनम्।
दुर्लभं येन केनापि
धीमता लभ्यते भुवि ॥

अर्थात् यह पद्मासन शरीर की सब व्याधियों का नाश करने वाला है। बहुत दुर्लभ है। कोई बुद्धिमान व्यक्ति इससे लाभ प्राप्त कर सकता है। भगवान शिव ने इसको सर्व व्याधि विनाश कर कहा है। यह बहुत बड़े रहस्य की चीज है। पद्मासनकी जो विधि ऊपर निर्दिष्ट की गई है। उसमें प्राण अपान रोधन क्रिया स्वाभाविक हो जाती है। अग्निमंडल दीप्त रहता, धातें सबल रहती है अपने स्थान से स्खलित नहीं होती है केवल मात्र इस पद्मासन का अभ्यास करने वाले योगी हैं वह वे सब प्रकार से व्याधि-रहित हो जाते हैं।

पद्मासन की एक और सरल विधि

उपरोक्त पद्मासन कहीं कहीं पर बद्ध-पद्मासन के नाम से कहा जाता है क्योंकि इसमें अपने दोनों हाथों को पृष्ठ भाग से घुमाकर के बांये हाथ से बांये और दहिने हाथ से दहिने पैर के अंगूठ को दृढ़तर पकड़ कर मेरु दंड को सीधा रख कर जालन्धर बन्ध लगा कर किया जाता है। यह सर्व साधारण के लिये कुछ क्लिष्ट मालूम पड़ता है अतः हमारे पूर्वजों ने एक और सरल विधि का उपदेश किया है।

कृत्वासंपुटितौ करौ दृढतरं बद्ध्वा तु पद्मासनं गाढ़ वक्षसि सन्निधाय चिबुकं ध्यायंश्च तच्चेतसि ॥

वारं वारम पान मूर्ध्व मनिलं प्रोत्सार यन्पूरितंन्यचन्प्राण मुपैति बोधमतुलं शक्ति प्रभावान्नरः ॥

पद्मासने स्थितो योगी
नाडी द्वारेण पूरितम् ॥
मारुतं धारयेद्यस्तु स
मुक्तो नात्र संशय॥

अर्थात् ऊपर कथन किये पद्मासन की जो विधि लिखी गई है। उसी के अनुसार पद्मासन लगा करके अपने दोनों हाथों को पीछे की ओर न घुमाकर सम्पुटित करके सामने ही रक्खे और ठोढ़ी को छाती में लगाकर अर्थात् जालंधर बन्ध, लगाकर दिव्य तेज का ध्यान करे और अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण करे और प्राण को अपान की ओर आलोड़ित करे। इस प्रकार पद्मासन स्थित योगी ब्रह्म चिन्तन करता हुआ नाड़ी नाड़ियों में परिपूरित वायु को प्राणायाम के बल से इकट्ठा करके और कुण्डलिनी महाशक्ति को जगा कर सुषुम्ना प्रवेश कराता है वह अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। इसमें कोई शंका नहीं।

अपनी बायीं जंघा पर दाहिने पैर के पंजे को और दाहिनी जंघा पर बायें पैर के पंजा पर मेरुदंड को सीधा रखते हुए दृढ़ता से रखकर और ठोढ़ी को छाती पर लगाकर अर्थात् जालन्धर बन्ध करके दोनों हाथों को सम्पुटित करके उत्संग रखे इसको पद्मासन कहते हैं। और यह विधि सर्व-साधारण के लिये उपादेय है।

साधारण पद्मासन का फल

उपर्युक्त पद्मासन के फलानुसार ही यह आसन भी सर्व व्याधि विनाशकर है। और प्राण अपान गति रोधन करके प्राणायाम करने से ब्रह्म विलीनता को प्राप्त कराता है।

मुक्त पद्मासन करने की सरल विधि

आश्रम-समाचार

मिर्जापुर में योग-प्रचार कार्यक्रम

(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

प्रयागराज में माघ मेले का वार्षिक योग प्रचार कार्य-क्रम अत्यंत धूम धाम से सम्पन्न कराकर श्री गुरुदेव जी कार द्वारा मिर्जापुर पधारे। मिर्जापुर का यह प्रथम योग प्रचार कार्य-क्रम वैद्य श्री लखनलाल जी के विनम्र निवेदन एवं आग्रह पर रखा गया था। मिर्जापुर में श्री गुरुदेव जी का शुभा-गमन ११ फरवरी १९७० को हुआ था।

जिस समय श्री गुरुदेव भगवान मिर्जापुर पहुँचे वहाँ एक विराट जुलूस की तैय्यारी कर रखी थी। एक सुन्दर बैण्ड बाजे के साथ एक विशालकाय हाथी पर परम कल्याण प्रद योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के भव्य एवं विशाल स्वरूप की झांकी सुसज्जित थी। इस मनोरम झांकी के पीछे एक सुसज्जित बग्घी पर चान्दी की पालकी में श्री गुरुदेव भगवान जी को विरा-जमान कराया गया। स्वागत आरती की गई और जुलूस मंथर गति से चलना आरंभ हो गया। नगर में जगह जगह पताकायें फहरा रही थीं तथा प्राय हर स्थान पर श्री गुरुदेव भगवानजी की सवारी को रुकवाकर आरती उतारी गई और पुष्प वर्षा के अतिरिक्त सुग-न्धित मालाऐं समर्पित की गई। यह सबमिर्जा-पुर निवासियों के अपूर्व उत्साह और श्रद्धा का द्योतक था। इस प्रकार नगर के विभिन्न राज मार्गों और बाजारों में से होती हुई श्री गुरुदेव जी की सवारी इंग्लीश गंज पहुँची, जहाँ वैद्य श्री लखनलाल जी के निवास स्थान पर ही श्री गुरुदेव भगवान के निवास का प्रबंध था। व्यवस्था पूर्ण रूप से सुव्यवस्थित और सुसंचालित थी।

११ फरवरी से २० फरवरी १९७० तक के इस योग प्रचार के अन्तर्गत, प्रातःकालीन कार्यक्रम में भजन कीर्तन और आरती के अतिरिक्त निःशुल्क रोग निदान और यौगिक चिकित्सा का कार्यक्रम रहा करता था। श्री गुरुदेव जी की ख्याति को सुनकर दूर-दूर से आने वाले रोगियों का तांता ही लगा रहता था और जो जिस भावना से आया उसे वैसा ही लाभ भी तत्काल हुआ। रोगियों में अधिकांश संख्या प्रेतबाधा से पीड़ित रोगियों की थी, किन्तु श्री गुरुदेव भगवान जी के मानस संकल्प के फलस्वरूप सभी रोगियों को तात्कालिक लाभ हुआ।

श्री गुरुदेव भगवान जी के व्याख्यानों की व्यवस्था राज दरबार नामक स्थान में की गई थी, जहाँ श्री गुरुदेव जी का शुभासन राजगद्दी

पर लगाया गया था। श्री गुरुदेव भगवान जी ने अपने दो ओजस्वी व्याख्यानों में योग तत्व और गुरुतत्व का सविस्तार विश्लेषण करते हुऐ सिद्ध किया कि योग मार्ग ही एक ऐसा सार्वभौम एवं सरलतम उपाय है जिससे मन की एकाग्रता न्यूनतम समय में प्राप्त करके साधक अपने साधन पथ पर अग्रसर हो सकता है। अष्टांग योग के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुऐ, श्री गुरुदेव जी ने मन की एकाग्रता का महत्व समझाया और व्यस्त गृहस्थों को सरलतम साधनों द्वारा मन की एकाग्रता प्राप्त करके ईश्वर साक्षात्कार का सीधा और सच्चा मार्ग बताया।

मिर्जापुर में यो-गप्रचार की धूम मचाकर वहाँ के निवासियों सत्संगी और साधकों को रोते-बिलखते छोड़ कर आगामी कार्यक्रमों की पूर्तिहेतु श्री गुरुदेव भगवान जी ने २० फरवरी १९७० को मार्मिक विदाई के पश्चात् मिर्जा-पुर से वाराणसी के लिये प्रस्थान किया।

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में योग-प्रचार की धूम

(२० फरवरी से २४ फरवरी १९७० तक)

भाई रमाशंकर श्रीवास्तव की वर्षों की साध थी कि श्री गुरुदेव भगवान जी का योग प्रचार काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय में भी हो। अस्तु, इस साध की पूर्ति हेतु विश्व विद्यालय के कुल सचिव श्री काली नरेशलाल जी एवं श्री रमाशंकर के विनम्र निवेदन पर श्री गुरुदेव भगवान ने काशी हिन्दू विश्व विद्यालय में अपने प्रथम योग-प्रचार की स्वीकृति २० फरवरी से २४ फरवरी १९७० तक के लिये प्रदान की थी। अस्तु, पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार श्री गुरुदेव भगवान जी का वाराणसी में शुभागमन २० फरवरी १९७० को मिर्जापुर से कार द्वारा हुआ जहाँ काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के सुप्रतिष्ठित एवं सम्मान्य प्राध्यापक समाज पदाधिकारी वर्ग एवं छात्र गण ने अत्यन्त उत्साह पूर्ण भव्य रूप से स्वागत करके एक स्वच्छ सुव्यवस्थित एवं सुसज्जित कोठी में श्री गुरुदेव जी भगवान को ठहराया।

श्री गुरुदेव भगवान जी का प्रातः कालीन कार्यक्रम परोपकारार्थ निःशुल्क रोग निदान एवं यौगिक चिकित्सा का ही रहा करता है। इससे प्रत्येक स्थान के योग-प्रचार कार्यक्रम में हजारों रोगियों को आश्चर्यजनक लाभ हुआ करता है।

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के प्राँगण में स्वर्गीय पं० महामना मदनमोहन जी मालवीय द्वारा संस्थापित श्री विश्वनाथ जी के मंदिर से संलग्न मनोरम सुसज्जित एवं विशाल सत्संग भवन में श्री गुरुदेव भगवान जी के पावन प्रव-चनों की व्यवस्था रखी गई थी। हजारों की संख्या में विश्व-विद्यालय के श्रद्धालु एवं जिज्ञासु छात्र तथा प्राध्यापक समाज, अधिकारी वर्ग, उपकुलपति एवं कुलसचिव के अतिरिक्त उनके पारिवारिक सदस्य और हिन्दी साहित्य

के शिरोमणि पं हजारीप्रसाद जी द्विवेदी आदि महानुभावों ने श्रीगुरुदेव भगवान जी के सारगर्भित प्रवचनों को सुनने का लाभ लिया।

अपने चार प्रवचनों में श्री गुरुदेव भगवान जी ने उपदेश दिया कि मन अनन्त शक्ति का भंडार है जिसे वश में करके साधक अपनी साधना के मार्ग में शीघ्र से प्रगति कर सकते हैं। योग मार्ग के दो विमार्गी राज योग अथवा सिद्धयोग और हठयोग का अन्तर बताते हुए श्री गुरुदेव भगवान जी ने बताया कि राज योग अथवा सिद्धयोग का सिद्धान्त है कि 'यत्र मनोलीयते तत्र प्राणोलीयते' अर्थात् जहाँ मन लय होता है वहाँ ही प्राण भी लय होता है, और हठयोग का सिद्धान्त है कि 'यत्र प्राणोलीयते तत्र मनोलीयते' अर्थात् जहां मन का लय होता वहीं प्राण लय होता है। इस प्रकार दोना मार्ग दूसरे से अभिन्न और एक दूसरे के पूरक है। हठयोग का महत्व बताते हुए श्री गुरुदेव भगवान जी ने कहा कि हठयोग की साधना पूर्वक जो राजयोग को प्राप्त होता है उसे स्पन्दन रहित समाधि प्राप्त हो जाती है और उसका कभी पतन नही होता क्योंकि हठेन मुतेनाशो मृतस्य मरण कुतः। इसी सदर्भ में श्री गुरुदेव भगवान जी ने जहाँ षड्मुखी शाम्भवी खेचरी भ्रूचरी आदि योग मुद्राओं का उल्लेख किया वहाँ ऐसे अन्यान्य सरल साधनों पर भी प्रकाश डाला जो दीखने में तो साधारण व्यायाम से ही लगते है किन्तु परिणाम में समाधि के जनक होते है।

श्री गुरुदेव भगवान जी के चार दिनों का कार्य क्रम व्यापक रूप से इतना लोक प्रिय रहा कि कुल सचिव महोदय ने समस्त छात्र प्राध्यापक और अधिकारी समाज की श्रद्धामय भावना से प्रेरित होकर श्री गुरुदेव भगवान जी से निकटतम भविष्य में ही कम से कम १५ दिनों के प्रोग्राम का विनम्रता पूर्वक आग्रह किया। किन्तु श्री सिद्ध गुफा सवाई के वार्षिकोत्सव और अन्यान्य पूर्व निश्चित प्रोग्रामो के कारण समय के अभाव में श्री गुरुदेव भगवान जी अपनी विवशता ही प्रकट करने को बाध्य हुये।

२४ फरवरी को अत्यन्त भावभीनी विदाई के पश्चात् श्री गुरुदेव भगवान जी ने तीन लोक से न्यारी नगरी से कछवा (जिला मिर्जापुर) के योग प्रचार कार्य क्रम के लिये प्रस्थान किया।

कछवा में योग प्रचार की विलक्षण धूम

(२४ फरवरी से २८ फरवरी १९७० तक)

यों तो कछवा बरैनी क्षेत्र मे श्री गुरुदेव भगवान जी का योग-प्रचार कोई नया नहीं था किन्तु इस वर्ष जो प्रचार कार्यक्रम कछवा में हुआ, वास्तव में विलक्षण ही था जहाँ इस क्षेत्र में योग प्रचार और आदर्श गुरु भक्ति का श्रेय बरैना निवासी श्री महेन्द्रनारायण जी कोटवार को है वहाँ इस वर्ष के अतीव उत्साह से योग प्रचार कार्यक्रम का प्रबंध कछवा निवासी बाबू भवानीप्रसादसिंह वकील साहब ने किया था। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा

कि गुरु भक्ति के आदर्श की शिक्षा इसी ग्रंथ से ग्रहण की जा सकती है।

श्री गुरुदेव भगवान जी को निश्चित तिथि को लाने लिये कछुवा एवं बरैली के कुछ सत्संगी कार की व्यवस्था के साथ वाराणसी पहुँच गये थे और वहां से श्री गुरुदेव भगवान श्री को कार द्वारा कछुवा लिवा लाये। वाराणसी से कछुवा तक की यात्रा में अनेक ग्रामों में स्वागतार्थ कदली दल और आम्र-पल्लव के तोरण द्वार सजाये हुऐ थे, जहां सैकड़ों श्रद्धालु नर नारियों ने गगनभेदी जय कारों पुष्प वर्षा और आरती से श्री गुरुदेव भगवान का अभिनन्दन करके स्वयं को कृतार्थ किया। इस प्रकार श्री गुरुदेव भगवान जी की सवारी कछुवा की प्रवेश सीमा पर आ पहुँची जहां एक अत्यंत विशाल और मन मोहक मुख्य तोरण द्वार सजाया हुआ था। तोरण द्वार की शोभा वर्णातीत थी। कदली खम्भों रेशमी वस्त्रों, वेदमंत्रों और रंग बिरंगे पुष्पों से मुख्य तोरण द्वार सजा हुआ था। सुसज्जित मुख्यद्वार के दोनों ओर बन्दूक धारी स्वयं सेवकों की पंक्तियां थीं। श्री गुरुदेव भगवान जी को ज्योंही विशाल स्वर्णिम छत्र से आच्छादित झिलमिलाते हुऐ चांदी के 'सिंहासन' पर विराजमान कराया गया त्योंही सैनिक प्रणाम में बन्दूकें दनदना उठीं। जुलूस के प्रस्थान से पूर्व वेदमंत्रों के द्वारा स्वस्तिवाचन हुआ और संस्कृत और हिन्दी में श्री गुरुदेव भगवान की स्तुतियां करके स्वागत आरति के उपरान्त मनोहर एवं सुमधुर ध्वनियां बजाते हुऐ बैण्ड बाजे के पीछे हजारों नागरिकों के जय घोष के साथ श्री गुरुदेव भगवान की सवारी मंथर गति से चल पड़ी। कछुवा में अपूर्व उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा था स्थान स्थान पर तोरण द्वार पताकायें और वेदमंत्रों के झण्डे रास्तेके दोनों ओर फहरा रहे थे। जनता ने अपनी श्रद्धा और प्रेमोत्साह में अगणित बार श्री गुरुदेव भगवान जी को पुष्प मालाओं से आच्छादित कर दिया था। बड़ा ही मनोहर दृश्य था-ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों भगवान सूर्य नारायण को बादल बार-बार ढंक रहे हों। जनता दर्शनार्थ समुद्र की लहरों की नाईं उमड़ रही थी जिसके कारण जुलूस की चाल बहुत ही धीमी थी। इसी अथक उत्साह के साथ, श्री गुरुदेव भगवान की सवारी बाबू स्वामी प्रसाद सिंह के निवास स्थान पर आ पहुँची जिसे बहुत ही परिश्रम और उत्साह से सजाया गया था। पंडाल अत्यंत विशाल था जिसमें लगभग ५-६ हजार श्रोताओं के बैठने का प्रबंध था। निवास स्थान और पंडाल तीव्र विद्युत प्रकाश से जगमगा रहा था। केवल दो तीन मील की शोभा यात्रा में ३ घंटों से अधिक समय लग गया था।

मुझे श्री गुरुदेव भगवान के अनेक स्थानों पर कार्य क्रम और स्वागत देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यहाँ की चहल-पहल और उत्साह देखकर अतीत की स्मृतियां मानस

पटल पर घूमने लगी। कई वर्ष पूर्व शामली में ऐसा उत्साह देखा था कि जिस ट्रेन से श्री गुरुदेव भगवान यात्रा कर रहे थे, उत्साहोन्मत्त जनता ने उस ट्रेन को शहर से बाहर ही रोक लिया था और कीर्तन करते-कराते हुए ट्रेन को स्टेशन तक ले गये जहां श्री गुरुदेव भगवान को प्लेटफार्म पार करने में ही पूरा एक घण्टा लगा था। कलकत्ता में कई वर्ष पूर्व अपूर्व स्वागत हुआ था। हावड़ा स्टेशन पर स्वागतार्थ मालायें लिये सैकड़ों गण्यमान्य नागरिक और उद्योगपति उपस्थित थे। प्लेटफार्म के सामने एक छोर से दूसरे छोर तक कारों की दोहरी लाइनें लगी हुई थीं। दतिया का स्वागत भी अपने ढंग का निराला ही था। कई मन गुलाब के पुष्प पुष्प-वर्षा में गुरुदेव भगवान की सवारी पर चढ़ गये थे काशी में स्वागत के समय सम्पूर्ण स्टेशन जयकारों से गुंजायमान हो उठा था। इटावा में ज्योंही श्री गुरुदेव भगवान की ट्रेन प्लेटफार्म पर पहुँची और खड़ी भी नहीं हो पाई थी कि वहां का पुलिस बैण्ड वीररस की ध्वनियां बजाने लगा और स्टेशन के अधिकारी गण और अन्यान्य भक्त गण मालायें लेकर पंक्तिबद्ध खड़े थे और विनम्रता पूर्वक बारी बारी से मालायें अर्पित करते हुए प्लेटफार्म पर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। किन्तु कछवा में श्रद्धा प्रेम और उत्साह के समुद्र को उमड़ता देखकर और वहां की सब प्रकार की सुव्यवस्था देखकर यही कहना पड़ रहा है कि कछवा का यह योग प्रचार कार्यक्रम श्री सिद्ध गुफा सवाई के योग महोत्सव का ही दूसरा किन्तु छोटा रूप है। वहां के निवासियों में गुरुभक्ति की भावना कूट कूट कर भरी हुई है। यदि किसी को गुरुभक्ति के आदर्श व्यवहार की शिक्षा ग्रहण करनी हो तो वह कछवा-बरैनी के सत्संगियों से सीखे। इस का श्रेय परम गुरु भक्त महेन्द्रनारायण जी कोटदार को ही है।

योग प्रचार कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रातः काल भजन संकीर्तन और आरती के बाद निःशुल्क रोग निदान और यौगिक चिकित्सा का ही कार्यक्रम निश्चित रहा करता है। अस्तु, प्रातःकाल से ही रोगियों की पंक्तियां लगनी प्रारंभ हो गईं। शारीरिक व्याधा के पीड़ितों के अतिरिक्त प्रेत बाधा के रोगी भी थे। प्रथम तो श्री गुरुदेव भगवान ने रोग निदान व्यक्तिगत रूप से करना प्रारंभ किया, किन्तु रोगियों की संख्या को बराबर बढ़ते हुए देखकर उन्होंने इस का एक निराला उपाय निकाला। श्री गुरुदेव भगवान ने तब कृपा पूर्वक यह घोषणा की कि तपेदिक और मानस व्याधा के रोगियों को छोड़कर अन्य सभी रोगी लाइन लगाकर बैठ जावें और जो जो साधन श्री गुरुदेव भगवान प्रदर्शित कराते जावें उनका अनुकरण करते रहें, सब को यथा रोग तथा लाभ होगा। देखने योग्य दृश्य था कि एक ओर हजारों पुरुष और दूसरी ओर हजारों देवियां पंक्तियों में बैठ कर सामूहिक रूप से ही जीवन तत्त्व साधन कर रहे हैं। आश्चर्य में डालने वाली बात

तो यह थी कि कार्यक्रम की सूक्ष्म अवधि में ही सब रोगियों को लाभ प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने लगा। प्रेतबाधा के रोगियों को श्री गुरुदेव भगवान आरती के मार्जन-जल का छींटा देते थे या फिर पुष्प प्रसाद दे दिया करते थे, जिससे प्रेतबाधा के भी समस्त रोगियों का लाभ ही हुआ। प्रेतबाधा की एक रोगिणी को ज्योंही श्री गुरुदेव भगवान ने पुष्प प्रसाद दिया तो प्रसाद सेवन करते ही उसे दौरा सा पड़ा और प्रेतावेश आ गया। आवेश में वह प्रेत गिड़गिड़ा कर और पुनः न आने की प्रतिज्ञा बारम्बार करता हुआ क्षमा याचना करने लगा। अंत में जब श्री गुरुदेव भगवान ने उसे कृपा पूर्वक क्षमा-याचना दे दी तो रोगिणी को एक विकट झटका सा लगा और वह सदैव के लिये उस प्रेतबाधा से मुक्त हो कर स्वस्थ हो गई।

श्री गुरुदेव के प्रवचन योग के विषय पर ही हुआ करते हैं। योग की वर्णाक्षरी का परिचय देते हुए श्री गुरुदेव ने यह समझाने की चेष्टा की कि योग क्या है। योग के सम्बंध में भ्रमात्मक धारणाओं का निराकरण करते हुए योगश्चित्त वृत्ति निरोधः के सिद्धान्त पर योग के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या की और यह बताया कि साधना की उच्चतम श्रेणी को प्राप्त करने का एकमात्र साधन योग मार्ग का अवलम्बन है। योग ही एक ऐसी सार्वभौम साधना पद्धति है जिसके द्वारा प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने अपने विश्वास के अनुसार साधना में सफलता मन की एकाग्रता से ही पा सकते हैं।

कछवा का यह कार्यक्रम चिरस्मरणीय ही रहेगा। क्योंकि उपस्थिति, चहल पहल श्रद्धा, उत्साह और व्यवस्था की दृष्टि से यह कार्यक्रम अपने ढंग का एक ही था और श्री सिद्धगुफा सवाई के महा मेले का कुछ छोटा रूप ही कहने योग्य था।

सालवन जि० करनाल में

कछवा जि० मिर्जापुर के उक्त कार्य-क्रम के बाद अकस्मात श्री गुरुदेव जी को सालवन जि० करनाल में जाना पड़ा। सालवन योग साधन आश्रम दशाश्वमेध तीर्थ पर श्री गुरुदेव जी के उत्कृष्ट प्रिय शिष्य श्री महात्मा कृष्णदास जी निवास किया करते थे। उनका माघ सुदी पंचमी तारीख १० फरवरी को आकस्मिक देहावसान हो गया जिसके कारण श्री गुरुदेव जी का सालवन पहुँचना आवश्यक था और वे वहाँ गये। यद्यपि श्री गुरुदेव जी ने अपने प्रिय शिष्य ब्रह्मचारी राम जी व केशवदेव जी को श्री कृष्णदास जी के सभी क्रिया कर्म विधिवत् कराने के लिये पहले से ही भेज दिया था और उन्होंने वहाँ जाकर सभी कार्य उत्साह पूर्वक सम्पन्न किये फिर भी अपने प्रिय शिष्य महात्मा कृष्णदास जी की पुण्य स्मृति में दो दिन वहाँ रुक कर योग-प्रचार कार्य-क्रम किया।

सालवन जि० करनाल के इस कार्य-क्रम के बाद श्री गुरुदेव जी अपने निर्धारित कार्य

क्रमानुसार शिवरात्रि से एक दिन पहले शीस्ता जि० मथुरा में पहुँचे।

शीस्ता में भव्य स्वागत

एवं योग प्रचार

श्री गुरुदेव श्री दिल्ली से जिस समय आगरा पहुँचे वहाँ पर शीस्ता के श्री ओम-प्रकाश जी पालीवाल कार लेकर पहले से ही पहुँचे हुए थे। उसी कार से श्री गुरुदेव जी दो घन्टे के लिये सवाई आश्रम पहुँचे और उसके बाद सायंकाल लगभग ३ बजे तक बौहरे के बास होकर शीस्ता पहुँचे। बौहरे के बास पर निकट वर्ती सड़क पर श्री गुरुदेव जी के स्वागत का समुचित प्रबन्ध किया गया था। बैण्ड ध्वनि एवं लोक प्रिय गीतों के गायन के बीच श्री गुरुदेव जी को शीस्ता ले जाया गया। शीस्ता में उनके रहने-सहने का प्रबन्ध उस प्रान्त के माने हुए धनिक श्री शाह ज्वालाप्रसाद पालीवाल की कोठी पर उनकी धर्मपत्नी श्रीमती फूल कुँवरि की ओर से किया गया था। इस कार्य-क्रम में ब्रह्मचारी ओमप्रकाश पालीवाल का बड़ा उत्साह था। कार्य-क्रम की शोभा देखते ही बनती थी। तीन दिन तक लगातार श्री गुरुजी के प्रवचन यहाँ होते रहे। शिवरात्रि को विशेष रूप से वैदिक विधि से गुरुदेव का पूजन किया गया। आये हुए भक्त समाज ने उन्हें पत्र पुष्प अर्पित किये। इसके बाद अपने पूर्व निश्चित कार्य क्रम में अनुसार श्री गुरुदेव जी लाडवा जि० करनालमें पहुंचे।

लाड़वा में भव्य कार्य-क्रम

श्री गुरुजी ता: ११ मार्च को लाडवा पहुँचे। लाडवा बस स्टैण्ड पर उनके प्यारे सत्संगियों के भीड़ पुष्प हार लेकर पहुंची हुई थी। लाडवा सिद्ध गुफा योग प्रचार मण्डल के प्रधान श्री साधूराम जी श्री पशु-पति नाथ के दर्शनों के लिये नेपाल गये हुए थे। उनके अतिरिक्त और जितने भी बहन-भाई स्वागतार्थ बस स्टैन्ड गये हुए थे उनका हृदयोल्लास देखते ही बनता था। लाडवा में योग का कार्य क्रम लग-भग १० रोज तक चला। जो बहुत ही भव्य एवं सराहनीय था श्री गुरुदेव जी के रहन-सहन आदि का प्रबन्ध ला० मुन्नीलाल जी ने श्री राधा-कृष्ण मंदिर में बड़ी सुव्यवस्था के साथ कर रक्खा था।

मण्डल के प्रधान श्री लाला साधूराम जी भी नेपाल पशुपतिनाथ की यात्रा पूर्ण करके श्री गुरुदेव जी के दर्शनार्थ ता० १६ मार्च को लाडवा पहुँच गये थे। लाडवा योग प्रचार कार्य-क्रम में श्री लाला रतनलाल, हकीम शिवशरण व ला० ब्रजमोहन आदि आदि सभी भाई बहनों का उत्साह सराहनीय था। लाडवा योग प्रचार कार्य-क्रम के अनन्तर श्री गुरुदेव जी वार्षिक महा सम्मेलन की तैयारी के लिये ता० २१ मार्च को लाडवा से चलकर ता० २१ मार्च को प्रातः सवाई आश्रम आ पहुँचे।

—x—

सम्पादकीय —

तीसरे वर्ष का शुभारम्भ

प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर परम पावन श्री प्रभुजी की कल्याणकारी जयन्ती के शुभ अवसर पर अब से दो वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ला ६ सं० २०२५ को श्रद्धेय श्री सद्गुरुदेव जी के संकल्प और सद्कृपा का अवलम्बन पाकर 'सिद्धयोग' इस धरा धाम पर अवतीर्ण हुआ था। विक्रमी संवत् २०२७ की होने वाली प्रभुजी की पुण्य जयन्ती पर अपने शैशव के दो वर्ष पूरे करके 'सिद्धयोग' अब अपने जीवन के तीसरे वर्ष का शुभारम्भ कर रहा है। जिन कृपानिधि श्री सद्गुरु देव जी ने इसे जन्म देकर अति उत्साह और प्यार से पाला-पोसा है वे ही इस के भावी-जीवन को भी सशक्त और सबल बनायेंगे ऐसा विश्वास हम सबको रखना चाहिए। किन्तु इस विश्वास के रखने के साथ साथ अपने इस कर्तव्य-पालन का ध्यान भी हम सभी को रखना है कि 'सिद्धयोग' योग के जिन आधार भूत सिद्धान्तों के प्रचारार्थ अपना जन्म लेकर आया है उनमें अपना यथाविध सक्रिय सहयोग भी हम सबको प्रदान करना है। बिना आप सबके सहयोग के 'सिद्धयोग' का प्रसार-क्षेत्र अधिक व्यापक होना सम्भव नहीं है।

इस सत्य से किसे असहमति होगी कि आज देश के वातावरण में जो अनाचार और असन्तोष की आग जल रही है उसका एक-मात्र कारण यौगिक निष्ठा और यौगिक आचरण का अभाव ही है। योग दर्शन की प्रथम शिक्षा का आरम्भ ही यम-नियम के परिपालन से होता है जो मनुष्य को भीतर बाहर से शुचिता पूर्ण और सदाचार पूर्ण बनाते हैं। बिना अहिंसा, सत्य, सन्तोष, शौच, ब्रह्मचर्य तप और ईश्वर प्रणिधान के धारण किये कोई इस यौगिक मार्ग पर आगे बढ़ ही नहीं सकता है। जिसने इन सब सद्गुणों का ग्रहण कर लिया है वही योगी होने का अधिकारी होता है।

अतः योग-धर्म का प्रचार ही देश के चरित्रोत्थान का मार्ग है। राष्ट्र को बलशाली, शक्तिशाली और चरित्रशाली बनाने के लिए यौगिक शिक्षायें जो दिशा दर्शन दे रही हैं उन्हें अपनाने की जरूरत है। वे योग पारंगत पंडित और योगदर्शन के अधिकारी विद्वान जो योग के प्रचार कार्य्य में संलग्न हैं सचमुच वन्दनीय हैं। योगयोगेश्वर सद्गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज न केवल 'सिद्धयोग' के द्वारा अपितु वर्ष भर तक निरन्तर देश के विभिन्न भागों में पर्यटन करके योग धर्म के प्रति जन जीवन में जो जागृति और अभिरुचि पैदा कर रहे हैं उसके लिए हम

सब उनके चिर ऋणी रहेंगे योग की शिक्षाओं को जन-जन तक पहुँचाना ही उन्होंने अपना जीवन लक्ष्य बना लिया है। योग के जिन साधनों को अपना कर वे सिद्धयोगीश्वरों की जिस ऊँची भूमिका पर जा पहुँचे हैं उसी ऊँची भूमिका पर पहुँचाने का शक्ति संचार वे योग मार्ग पर चलने वाले अपने प्रत्येक साधक में करने की अभिलाषा रखते हैं। यही कारण है कि उनके साधक शिष्यों का मण्डल प्रति वर्ष विशाल से विशालतर होता चला जा रहा है।

प्रसंगवश हम यहाँ यह लिख देना भी उचित समझते हैं कि हमारे देश की केन्द्रिय और प्रादेशिक सरकारों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे योग प्रचार करने वाली ऐसी संस्थाओं, पत्रों और विद्वानों को इस दिशा में यथोचित सहयोग प्रदान करें ताकि चरित्रवान सत्यवादी और सद्गुण सम्पन्न राष्ट्र के निर्माण का महत्त्वपूर्ण कार्य जो इन्होंने उठाया हुआ है शीघ्र सम्पन्न हो सके। समाज कल्याण के नाम पर बहाया जाने वाले धनोमित धन का यदि कुछ अंश भी सरकारें इस दिशा में व्यय कर सकें तो यह उस धन का सदुपयोग ही होगा। लेकिन ऐसा संकेत देना अरण्य रोदन ही हो सकता है। अन्त में हम तृतीय वर्ष के शुभावसर पर अपने प्रत्येक हितैषी पाठक और ग्राहक, अनुग्राहकों के प्रति अपनी हार्दिक मंगल कामनायें अर्पित करते हैं और उनसे यह अपेक्षा रखते हैं कि वे 'सिद्धयोग' के स्वयं ग्राहक बनकर तथा दूसरों को बनाकर उसके प्रचार क्षेत्र को बढ़ायेंगे ताकि योग-धर्म का अधिकाधिक प्रचलन जन जीवन में हो सके। और फिर प्रत्येक भारतीय के आदर्श चरित्र को देखकर महाराज मनु की यह वाणी सार्थक हो सके

एतद्देशस्य प्रसूतस्य
सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्
पृथिव्यां सर्व मानवाः

—दिव्य

क्षमा याचना—

'सिद्धयोग' के प्रस्तुत विशेषाङ्क के लिए अनेक उपयोगी लेख श्री सद्गुरुदेवजी महाराज को प्रकाशनार्थ प्राप्त हुए थे जो हमारे पास विलम्ब से आने के कारण इस अंक में स्थान नहीं पा सके हैं। ऐसे सभी प्राप्त लेखों को हम आगामी अङ्क में प्रकाशित कर रहे हैं। इस अङ्क में न दे पा सकने के लिए हम लेखक बन्धुओं से सादर क्षमा याचना करते हैं।

—दिव्य

जीवन-निर्माण को नई दिशा देने वाले

हमारे प्रकाशन

१.	योगासन चित्रपट ।	१-२५
२.	योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी की स्वहस्त लिखित जीवन कथायें ।	१-२५
३.	ब्रह्मचारी गोपालानन्द ।	१-०
४.	योगीराज स्वामी मुलखराज जी	१-०
५.	योग क्या ?	०-२५
६.	यम—नियम ।	०-३७
७.	आठ योगी ।	१-०
८.	समाधिस्था योगनियें ।	१-०
९.	सवाई के चमत्कारिक चरित्र ।	०-७५
१०.	भोग, रोग और योग ।	
११.	योगेश्वर चरित्र माला [भजन]	०-६०
१२.	श्री महाप्रभु जी का गीतकाव्य [कविता]	०-७५
१३.	सुधा-संगीत [भजन]	०-५०
१४.	इन्द्र शर्मा के आठ भजन	०-१०
१५.	श्री सद्गुरु संकीर्तन भजन—माला	०-६०
१६.	जीवन तत्व साधन ।	०-५०

मिलने का पता:—

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन

योग-प्रशिक्षण केन्द्र, श्री सिद्ध गुफा
सवाई (आगरा)

Sidha-yog. Regd. NO. L. 1002

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक सम्पादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सुख का पथ (स्व० श्री मेहरबाबा)

स्वार्थपरता का अनिवार्य परिणाम असंतोष और निराशा है, क्योंकि इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। अतः सुख की समस्या का दूसरा नाम इच्छात्याग की समस्या है। तथापि यांत्रिक दमन के द्वारा, इच्छाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। ये केवल ज्ञान के ही द्वारा छिन्नमूल की जा सकती हैं। यदि तुम विचारों की गहराई में डूबो, और कुछ क्षणों के लिए गंभीरतापूर्वक सोचो, तो तुम्हें इच्छाओं का खोखलापन मालूम हो जायगा। सोचो कि इतने वर्षों तक तुम्हें कितना सुख मिला, तथा तुम्हें कितना दुःख मिला। जीवन में तुमने जो भोग किया, वह आज शून्य के बराबर है, और जीवन में तुम्हें जो कष्ट मिला, वह भी कुछ नहीं के समान है। सब भ्रामक था। सुखी होने का तुम्हें अधिकार है। लेकिन तो भी तुम स्वयं वस्तुओं की चाह करके, अपना दुःख पैदा करते हो। चाह सतत अशांति का उद्गम स्थान है। जिस वस्तु की तुमने चाह की, यदि वह तुम्हें नहीं मिली, तुम निराश होते हो। यदि वह तुम्हें मिली, तो तुम उसे अधिकाधिक चाहते हो, और दुःखी होते हो। कहो "मुझे कुछ भी नहीं चाहिये" और सुखी होओ। चाहों की असारता की निरंतर अनुभूति, तुम्हें अंत में ज्ञान प्रदान करेगी। यह आत्मज्ञान चाहों से तुम्हें मुक्त करेगा, और इस प्रकार, स्थायी सुख का पथ तुम्हें मिल जायगा।

चाहों और आवश्यकताओं का भेद भली भांति समझ लेना चाहिये। अभिमान और क्रोध, वासना और लोभ, ये सब चाह के भिन्न रूप हैं। यदि सुख पाना है, तो सावधानीपूर्वक हमें इनका वध करना चाहिये।

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा विश्व कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बजाजा कटरा, ताजगंज, आगरा-१

शक्ति पात

प्रभु ने निज कर धर दिये शीश,
रामरत्नी के सम्मुख प्रगटे कृपासिन्धु जगदीश ।